।। ओ३म् ।।

पाक्षिक

परोपकारी

• वर्ष ६० • अंक ६ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • मार्च (द्वितीय) २०१८

नवसंवत्सर की शुभकामनाएँ

आर्यसमाज के संस्थापक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्थापना - चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत् १९३२

सम्बन्धित लेख पृष्ठ सं. १२ पर

आर्यसमाज फ्लॉरिडा, अमेरिका से महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय देखने ऋषि उद्यान अजमेर में पधारे आर्यजन।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० अंक : ०६

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: चैत्र शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

मार्च द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. महर्षि दयानन्द और उनका वेदप्रचार	सम्पादकीय	०४
०२. लोकराज बनाम लोकलाज	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०९
०४. आर्यसमाज का स्थापना-दिवस	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	१२
०५. समितिः समानी	तपेन्द्र वेदालङ्कार	१५
०६. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		१८
०७. कर्मदेह, उपभोगदेह और उभयदेह	महात्मा चैतन्यस्वामी	२०
०८. कुरीतियों का कुचक्र तोड़ना ही...	पं.उम्मेदसिंह विशारद	२३
०९. आर्यसमाज, आर्य और वैदिक...	मधु वार्ष्णेय	२५
१०. शङ्का समाधान- २१	डॉ. वेदपाल	२८
११. वैदिक धर्म के सशक्त हस्ताक्षर...	प्रकाश आर्य	३०
१२. हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में....	डॉ. प्रभु चौधरी	३४
१३. संस्था-समाचार		३६
१४. हम भी याद आयेंगे-पं. गुरुदत्त...	सोमेश 'पाठक'	३७
१५. आर्यसमाज! जन्म और जीवन...	रामनिवास 'गुणग्राहक'	३९
१६. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

महर्षि दयानन्द और उनका वेदप्रचार

दयानन्दीय सिद्धान्त-सागर में अनन्तादिविशेषणों से युक्त परमात्मा के साथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रत्नराशि 'वेद' है। महर्षि ने तपोबल, योगबल एवं अपने सुदीर्घकालिक चिन्तन से जिस परम सत्य का साक्षात्कार किया उसमें वेद-ज्ञान सर्वोपरि है। महर्षि की वेद-निष्ठा, वेद-भक्ति उन्हें अपने समकालीनों से ही नहीं प्रत्युत सहस्रों वर्षों में उत्पन्न महापुरुषों में भी उच्च सिंहासन पर विराजमान कर देती है, क्योंकि महर्षि कठिन काल में अवतरित हुए और अपने अविचल ब्रह्मचर्य और बहु-अंगी तपश्चर्या से वेदार्थ को उन्होंने जीवित किया। वह वेदार्थ जो ऋषियों द्वारा रचित वेदांगों में सुप्त पड़ा था, विकीर्ण-सा! अज्ञानी मानव समूह ने उसे मात्र साज-सज्जा की वस्तु बना और समझा रखा था। महर्षि ने सिखाया कि यह तो लोक-परलोक की यात्रा का पाथेय है, इसके बिना इस मार्ग पर चल पाना संभव नहीं।

प्रसंगोपात्त यह रेखांकित करना अनुचित न होगा कि वैदिक शब्दावली और परम्परा में दयानन्द ही वर्तमान में 'ऋषि' संज्ञा से विभूषित करने योग्य हैं, भले ही इस शब्दावली और परम्परा से अनभिज्ञों-अल्पज्ञों ने 'ऋषि' शब्द के यथार्थ अर्थ को न जानते हुए अनेक ऐसे मान्यों को 'ऋषि', महर्षि शब्दों से अभिहित किया, जो वेदों से किन्हीं अर्थों में परिचित तक न थे। ''**ऋषिर्दर्शनात्**'', ''**साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः**'' इत्यादि वचनों को अपने व्यक्तित्व में चरितार्थ करने वाले वे ऋषिवर्य विलक्षण ही थे। वैमत्यों के झंझावातों से टकराते, विदेशी-विधर्मियों से शासित परतन्त्र राष्ट्र के नागरिक के रूप में प्राप्तजन्मा, अविद्या-अज्ञान से चतुर्दिक् व्याप्त काल में उत्पन्न उन दृढ़चेता और क्रान्तद्रष्टा ने तपोयोग के प्रखर बल को दर्शाते हुए ईश्वरीय ज्ञान और सामर्थ्य को प्रत्यक्ष और साक्षात् प्रस्तुत किया। हजारों साम्राज्य जिस योगी के सम्मुख तुच्छ होते हैं, ऐसे महामानवीय रूप को विश्व के सम्मुख रखा-अपराजेय! अविकम्प! और प्रतिहत। महद्विपदाएँ उस महामहिम ईश्वर-विश्वासी के दृढ़ संकल्प को डिगा न सकीं, क्षणमात्र को भी संशय का घटाटोप उस प्रचण्ड मार्त्तण्ड को आच्छादित न कर सका। परमात्मा के सत्य स्वरूप का उद्घोष करने वाले उन अद्भुत महामना का व्यक्तित्व जीवन-पर्यन्त दैवीय सम्पदा की दिव्य आभा से समुज्ज्वल रहा।

लौकिक एवं व्यावहारिक जगत् में दिव्य दयानन्द को 'धर्म' का पर्याय 'वेद' ही मान्य है, वे उसे सर्वोपरि प्रतिष्ठापित करते हैं और इसी के अनुशासन में चलने से समस्त कार्यों की संसिद्धि मानते हैं। हमें नहीं याद पड़ता कि महाभारत-काल के पश्चात् किसी महामना ने प्राणपण से इस नित्य वेद-ज्ञान के प्रति इतनी श्रद्धा-प्रदर्शन-पूर्वक इसके पठन-पाठन के लिए ऐसा घनघोर आन्दोलन किया हो। विभिन्न शास्त्रों एवं अन्यान्य पुराणादि ग्रन्थों के व्यापक प्रचार-प्रसार के मध्य वेदों को प्रतिष्ठित करना महर्षि को अपनी विद्वत्ता के प्रदर्शन हेतु अभीष्ट नहीं था, बल्कि उन्हें पूर्ण विश्वास था और वे अपने ज्ञानपूर्वक यह मानते और जानते थे कि वेदराशि ही ईश्वर-प्रदत्त वह ज्ञान है जो शुद्ध है, मानवोत्थान एवं मानवता की एकता का एकमात्र उपाय है और जिसका सम्यक् पठन-पाठन करना एवं तदनुकूल आचरण ही परमात्मा की आज्ञा का पालन करना है।

''**सर्वज्ञानमयो हि सः**'', ''**सर्वं वेदात्प्रसिध्यति**'', ''**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**'' इत्यादि आर्षवाक्यों को जहाँ अन्य विद्वानों, महापुरुषों ने स्पर्शमात्र करके छोड़ दिया वहीं दयानन्द ने उसे न केवल जीवनसाफल्य का अभिन्न अंग बताया बल्कि संसार के विचारकों को बाध्य किया कि संसार में धर्म का वास्तविक रूप जानने, धार्मिक जीवन जीने और संसृति-सागर से पार उतरने में केवल और केवल वेदज्ञान-नौका ही एकमात्र साधन है। दयानन्द से पूर्व हुए सारे ऋषि इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे और इसी कारण उन्होंने यथार्थ ही वेदों की महत्ता प्रतिपादित की, बल्कि साथ ही वेदों के वास्तविक अर्थों को सर्वसुलभ करने और उनकी पाठ्य-सुकरता के अभिप्राय से ही उन महर्षियों ने वेदांगों और उपांगों की रचना की। इस चतुर्वेदसंहिता को छोड़कर

किन्हीं अन्य ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अंग-उपांग-रूप ग्रन्थ नहीं रचे गए, जिससे सिद्ध होता है कि इस वेदचतुष्टय का ही प्रचार-प्रसार एवं नित्य पठन-पाठन और अर्थज्ञान ही ऋषि महर्षियों को अभीष्ट था और वर्तमान में भी करना मोक्षसिद्धि के लिए अत्यावश्यक है।

महर्षि ने वेदों में प्रतिपादित ज्ञानविज्ञान की एक छोटी-सी झाँकी स्वरचित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में दर्शित की है, जिसके आधार पर आर्य विद्वानों ने एतद्विषयक सार्थक ग्रन्थों का प्रणयन किया। इन विद्वानों के परिश्रम से आज हम इस स्थिति में हैं कि वेदों के अर्थ, उसका ईश्वरीय ज्ञान होना, वेदों में अनित्य इतिहास का अभाव, वेद और उसके पठन-पाठन में सहायक आनुषंगिक ग्रन्थों की सुदीर्घ परम्परा, वेदप्रतिपादित विद्याओं का स्वरूप इत्यादि विषयों पर सम्यक् विचार-विमर्श कर सकते हैं और उनसे लाभान्वित हो सकते हैं। दुर्भाग्य से, महर्षि और आर्यसमाज के विद्वानों के सतत एवं अहर्निश भागीरथ प्रयत्नों के बावजूद हम समाज को वेदोन्मुखी नहीं बना सके। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के छात्र-अध्यापकों के बीच वेद और उसके वास्तविक अर्थों की प्रतिष्ठापना नहीं हो सकी। वेद-आश्रित या उनसे उद्भूत विद्याओं की प्रतिष्ठा तो है- व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद इत्यादि, परन्तु इनका मूल **'वेद'** हैं; ऐसा जानने-मानने वाले स्वल्प संख्या में ही हैं। सूचना-विस्फोट और संचार-क्रान्ति के इस वर्तमान युग में हमारे इस क्षेत्र में पिछड़ने का कारण निष्ठा-न्यूनता और मिशनरी भावना का अभाव इत्यादि हैं।

यदि योजनाबद्ध ढंग से और निष्ठा-लगनपूर्वक कार्य किया जाए, तो महर्षि के वेदप्रचार के स्वप्न को साकार किया जा सकता है। **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** के विषयों को आधार बनाकर यदि आर्यविद्वद्वर्ग छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार करे और आर्य संस्थाएँ यदि उनको महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में निःशुल्क वितरित करें, तो शायद हम वेद-प्रचार की दिशा में सार्थक पहल कर सकें।

वर्तमान काल में तो ऋषि दयानन्द का ही हम पर सबसे बड़ा ऋण है, उससे उऋण होने का उपाय न केवल तदनुकूल आचरण करना है, बल्कि वेदों के प्रचार-प्रसार में सक्रिय भागीदारी भी सुनिश्चित करनी है-**"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"**

हमें ध्यान में रखना चाहिए कि मनुष्यकृत असंख्य ग्रंथ भी उस शुद्ध स्वरूप परमात्मा के वेदज्ञान की समानता नहीं कर सकते। तपश्चर्यापूर्वक यथायोग्यता परिश्रम करके हम वेदों में निर्दिष्ट विद्याओं का अधिकतम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। वेदों के पठन-पाठन को जीवित-जाग्रत रखते हुए वैदिक और आर्ष परम्परा को सतत प्रवाहित रखना हम आर्यों का महान् और प्रमुख कर्त्तव्य है। नव संवत्सर में हम प्रणपूर्वक इस कर्त्तव्यपथ पर चलने की शक्ति प्राप्त करने की परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, क्योंकि वही हमारा सच्चा पिता, गुरु और आचार्य है-

न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते।
निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात् सनातनात्॥

दिनेश

परोपकारिणी सभा का वनवासी शिविर

महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में परतवाड़ा से २० किलोमीटर की दूरी पर स्वामी श्रद्धानन्द सेवा केन्द्र की ओर से वर्ष २०१८ का पहले युवा शिविर की तिथियाँ कुछ ही दिन में घोषित कर दी जायेंगी। शिविर में १५ से ३० वर्ष तक की आयु के युवक भाग लेंगे। उन्हें सन्ध्या हवन के प्रशिक्षण के साथ-साथ वैदिक सिद्धान्तों का आवश्यक ज्ञान और वैदिक संस्कार भी दिये जावेंगे।

जातिभेद, ऊँचनीच, अस्पृश्यता निवारण के लिये घर-घर, ग्राम-ग्राम ऋषि सन्देश सुनाने की युवकों को प्रबल प्रेरणा दी जावेगी। परोपकारिणी सभा का मार्गदर्शन व सहयोग सेवा केन्द्र को सदा प्राप्त रहता है और रहेगा। दानी सभा को सहयोग करें।

निवेदक- पंकज शाह-परतवाड़ा (शिविर संचालक), राहुल आर्य-अकोला (शिविर व्यवस्थापक)

लोकराज बनाम लोकलाज

डॉ. धर्मवीर

एक बार डॉ. धर्मवीर जी के सामने यह प्रश्न आया कि दयानन्द ऋषि कब से बने, तो उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि दयानन्द जन्म से ऋषि थे। उन्होंने प्रारम्भ से ही सत्यासत्य का विवेचन कर उसे स्वीकारा। दयानन्द जैसा सत्याग्रही, विवेचक, दार्शनिक जब किसी विषय पर सोचता है तो वह उसके मूल तक पहुँचकर ही कोई निर्णय देता है। ऋषि दयानन्द के पश्चात् भी पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, पं. चमूपति, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय सरीखे शास्त्रज्ञ दार्शनिकों ने इस पद्धति को अक्षुण्ण रखा। उसी परम्परा के संवाहक के रूप में हमें डॉ. धर्मवीर जी दिखाई देते हैं। सामयिक घटनाओं पर परोपकारी में लिखे उनके सम्पादकीय समाज की समस्याओं का जिस गहराई से विवेचन करते थे, उसे एक दर्शनशास्त्र कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। इसी कारण सभा ने इन सम्पादकियों को पुस्तकाकार देने का संकल्प किया है।

कोई दार्शनिक विषय के मूल तक जाने के लिये मजबूर होता है। उथलापन उसे कतई स्वीकार नहीं होता। ऐसा ही कुछ इस लेख में है। यह लेख सम्पादकीय के रूप में १९९० के अप्रैल अंक में लिखा गया था। तत्कालीन उपप्रधानमन्त्री देवीलाल के नारों पर प्रतिक्रिया इस लेख में दी गई थी, पर दार्शनिक तो दार्शनिक ठहरा, कलम उठाई और समस्या के मूल में उतरते चले गये, सत्य-असत्य, सही-गलत, उचित-अनुचित, पाप-पुण्य, नैतिकता-अनैतिकता की गुत्थियों को सुलझाकर पाठकों के समक्ष रख दिया और उसके बाद सामयिक विषय पर चार पंक्तियाँ लिखकर समापन कर दिया। इस लेख को पढ़कर पाठकगण अपने ज्ञान में अवश्य किसी उपलब्धि का अनुभव करेंगे-उद्देश्य के साथ। -सम्पादक

संसार में प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ प्राप्त करता है। उसे प्राप्त करना पड़ता है। संसार की वस्तुयें मनुष्य के लिये हैं, उनका प्राप्त करना मनुष्य के लिए आवश्यक है और जीवित रहने के लिए अनिवार्य, इसीलिये संसार के सभी मनुष्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। यत्न करना और वस्तु को पाना बुरा नहीं है, परन्तु इस प्रयत्न के साथ जो प्रेरणा जुड़ी है वही अच्छाई और बुराई का आधार है। इसी प्रेरणा की सब लोगों में समानता है। सभी इससे प्रेरित हैं इसलिये किसी व्यक्ति अथवा किसी कार्य का मूल्यांकन सभी समान रूप से कर पाते हैं। इस मूल्यांकन को कोई अन्य अपनी इच्छानुसार बहुत प्रभावित नहीं कर सकता, यह मूल्यांकन प्राकृतिक है, आत्मा की अनुभूति पर आधारित है, अन्तःप्रेरित है। इसे बाहर के दबावों से किसी अंश में अभिव्यक्त करने से रोका जा सकता है, परन्तु अनुभव करने से नहीं रोका जा सकता। इन्हीं को आधार बनाकर विधि एवं नियमों का प्रवर्तन किया गया है। विधि-नियम को बुद्धि और तर्क से अन्यथा प्रतिपादित किया जा सकता है, परन्तु अनुभव को तर्क से अन्यथा करना संभव नहीं है। इसी कारण इन अनुभवों के अन्याय करने के प्रयत्न को मूर्ख बनाना कहा जाता है, जिससे इस सत्य का उद्घाटन हुआ। कोई व्यक्ति किसी को कुछ समय के लिये मूर्ख बना सकता है, परन्तु सभी को सदा मूर्ख बनाना संभव नहीं।

इस अनुभव से विधि एवं नियमों की दूरी बढ़ने के कारण मध्य में एक शब्द और जुड़ गया है जिसे नैतिकता कहते हैं। यद्यपि विधि नैतिकता के प्रतिपादन के लिये निर्मित की गई है परन्तु मनुष्य के द्वारा किये गये कार्य विधिसम्मत होकर भी अनैतिक हो सकते हैं और नैतिक होकर भी विधिविरुद्ध। क्योंकि एक अन्तःप्रकाशित है तो अन्य बुद्धि से आरोपित। अनुभव को झुठलाने के प्रयास में शब्द अपने अर्थ छोड़ते जाते हैं। क्योंकि अनुभव को शब्द उचित अभिव्यक्ति नहीं दे पाते तब उचित शब्द खोजा जाता है। अनुभूति सब में समान है इसलिये अनुभूतियों-अनुकूलताओं को हमारे कार्य का परिणाम होना चाहिये। इन अनुभूतियों तथा संवेगों के कारण मनुष्य से भिन्न पशु-पक्षी आदि भी मनुष्य की भांति प्रभावित होते हैं। मनुष्य अपने अनुभवों के कारण उस पर विचार करके दूसरे के अनुभव को भी वैसा ही जानता और समझता है तब कुछ करने और कुछ न करने का प्रश्न उसके सामने उपस्थित होता है। करने के लिए अपने समान दूसरों के अनुभव को समझकर निश्चय करेगा तब वह उचित के लिये प्रयत्न करेगा, परन्तु अपनी बुद्धि को मुख्य मानकर कार्य करेगा तो

उचित-अनुचित का वहाँ विवेक समाप्त हो जायेगा।

उचित के प्रति मनुष्य के मन में जो नैसर्गिक सम्मान है, जिसके कारण मनुष्य गलत कार्य करके भी उसे उचित सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। विवेकपूर्ण कार्य करने से आत्मा को लाभ मिलता है और इस कार्य को परमेश्वर की सहायता प्राप्त होती है। परमेश्वर की इस सहायता के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों में लिखा है। बुरे कर्म में भय, शंका और लज्जा का होना परमात्मा द्वारा आत्मा को अनुचित कार्य से निवृत्त होने की प्रेरणा है। इसी प्रकार अच्छे कार्य करने में आनन्द-उत्साह और निर्भयता का होना भी परमेश्वर द्वारा आत्मा को अच्छे कार्य के लिए प्रेरित करना है। इसी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य अपने बुरे कार्य को छिपाने का यत्न करता है और अच्छे कार्य को प्रकाशित करना चाहता है, उसकी इच्छा रहती है सभी उसके अच्छे कार्य को जानें और प्रशंसा करें।

संसार में स्थूल रूप से ऐसा लगता है कि यहाँ सत्य के लिये कोई स्थान नहीं है। सत्याचरण के लिये संसार में लोगों को कष्ट उठाते हुए देखकर हम सत्याचरण से लोगों को विमुख होते देखते हैं। लगता है सत्य का पालन करना लाभप्रद नहीं है और न ही सहज है। यदि इस पर विचार करके देखा जाय तो यह बात वास्तविक नहीं है। मनुष्य अपने जीवन में थोड़े से सुख को प्राप्त करने के लिए बहुत कष्ट उठाता है। धन कमाने के लिए व्यक्ति दिन रात परिश्रम करता है, भूख-प्यास की परवाह नहीं करता, परिश्रम करता है, यात्रा करता है, रात्रि जागरण करता है अधिक परिश्रम से रुग्ण भी हो जाता है परन्तु उसका परिवार और समाज उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखता है, उसे अपने श्रम से उपार्जित धन को देखकर स्वयं के प्रति गौरव का भाव उत्पन्न होता है। इस क्रम में हुई हानि को भी वह भविष्य के लाभ को देखते हुए सहन कर लेता है फिर सत्य व्यवहार में आने वाले कष्ट से इतना दु:खी और हताश क्यों हो जाता है। इसका उत्तर यही है कि एक ओर धन के रूप में परिणाम के प्रति वह विश्वस्त और आश्वस्त है परन्तु दूसरी ओर औचित्य और विवेकपूर्ण आचरण के परिणाम का धन की भांति स्थूल रूप से कोई लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता। इसीलिए अनुभव को पुष्ट करने हेतु बुद्धि, विचार और शास्त्र की आवश्यकता है। बुद्धि एक पैना शस्त्र है जिससे आत्मा के रास्ते के काँटे साफ भी किये जा सकते हैं या फिर उस मार्ग को सांसारिक लाभ के बदले काँटों से भरा भी जा सकता है।

औचित्य के साथ विचित्र शक्ति है। संसार में कोई कितना भी बलवान, धनवान और विद्वान् क्यों न हो वह अपनी सारी क्षमता अपने कार्य को उचित सिद्ध करने में लगा देता है। ऐसा करने के लिए वह अपने अन्त:करण से बाध्य है। संसार में मनुष्य तात्कालिक लाभ के और लोभ के वशीभूत होकर झूठ बोल सकता है, चोरी कर सकता है, बेईमानी कर सकता है परन्तु किसी भी मनुष्य को यह स्वीकार नहीं होता कि कोई उसे चोर समझे या चोर कहे। मनुष्य झूठ बोलता है और खूब बोलता है परन्तु उसे कोई झूठा कहे तो अपमान अनुभव होता है, क्रोध आता है, प्रतिकार करने के लिए उद्यत हो जाता है, झूठा कहने वाले व्यक्ति को दण्डित करने का यत्न करता है। बेईमानी से धन कमाना, लाभ प्राप्त करना अच्छा लगता है परन्तु एकान्त में भी कोई बेईमान कहे तो उसे स्वीकार नहीं होता, अपनी सारी बुद्धि और सारे विधि नियमों के बल उसे उचित सिद्ध करने में लगा देता है। यदि झूठ बोलने, चोरी करने बेईमानी करने में अपमान अनुभव न होता तो आज न्यायालय में चोर बेईमान और झूठा सिद्ध करने की आवश्यकता क्यों पड़ती। इसके विपरीत किसी को सच्चा ईमानदार कहने पर कोई न्यायालय नहीं जाता- इसने मुझे बेईमान होने पर भी क्यों ईमानदार कहा, झूठ बोलने पर भी मुझे सच्चा समझता है और कहता है। लोग कहते हैं इस संसार में झूठ का बोल-बाला है परन्तु विचार करके देखा जाय तो संसार में झूठ का कोई मूल्य नहीं है। एक व्यक्ति जो दिन भर झूठ बोलता है और आपके पास आता है और पाँच सौ रुपये माँगता है, कहता है मैं एक मास के अन्दर लौटा दूँगा। आप कहते हो तुम झूठे हो मैं तुम्हें पैसा नहीं देता। व्यक्ति उत्तर में क्या कहता है? नहीं इस बार मैं सच कह रहा हूँ और एक मास के अन्दर आपका धन लौटा दूँगा। उसके बहुत कहने पर आप विश्वास कर लेते हैं और उसे धन दे देते हैं। विचार करके देखें धन झूठे को दिया है या सच्चे को। संसार में जितना भी विज्ञापन होता है, आज तक किसी विज्ञापनदाता ने अपनी वास्तविकता बताने के बारे में सोचा भी नहीं होगा। कोई वनस्पति घी

बनाने वाला नहीं लिखता, इसमें चर्बी है। कोई नहीं लिखता मेरे द्वारा बनाये जाने वाले या बेचे जाने वाले सामान में मिलावट है, मेरा सामान नकली है, खराब है या पुराना है। इससे उल्टा सब उसे अच्छा, नया, असली बताते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि संसार में झूठ-व्यापार और व्यवहार में बहुत हो रहा है परन्तु झूठ के नाम पर नहीं सत्य के नाम पर। यही परिस्थिति धर्म के सम्बन्ध में है। वैसे तो **स्वामी दयानन्द ने धर्म से सत्य को पृथक् ही नहीं माना इसके विपरीत जहां धर्म शब्द का उपयोग किया वहां उसकी व्याख्या में सत्य का प्रयोग किया है और जहां सत्य की चर्चा है वहां उसे धर्म से स्पष्ट करने का यत्न किया है।** यह व्याख्या नई भी नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद्कार कहता है जो सत्य बोलता है उसे धर्माचरण करने वाला कहा जाता है। इस तरह से **सत्य के व्यावहारिक रूप को धर्म और धर्म के शाब्दिक स्वरूप को या सैद्धान्तिक पक्ष को सत्य कहते हैं। आज संसार में पाखण्ड और अधर्म का बहुत प्रचार-प्रसार है, इससे धर्म का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता, न ही धर्म निर्बल होता है।** संसार का सारा अधर्म और पाखण्ड धर्म के नाम पर चल रहा है पाखण्ड या अधर्म के नाम पर नहीं। सत्य धर्म का आन्तरिक और बाह्य रूप है, आन्तरिक अनुभवजन्य है, बाह्य दर्शनीय। उसे धर्म-चिह्न भी कहा गया है उन। चिह्नों का हम आदर करते हैं, अधार्मिक उनको धारण कर धोखा देते हैं। **हजारों बार धोखा खाकर भी धर्म से विश्वास नहीं उठता, हमें वास्तविक धर्म की संभावना लगे तो हम फिर धोखा खाने को तैयार हो जाते हैं क्योंकि धर्म ही वास्तविक बल है वास्तविक लाभ है। तो फिर जिसकी संभावना में इतना बल है, जिसके नाम पर दुनिया अनादिकाल से अनन्त काल तक धोखा खाकर भी उसको पाने के लिये उतनी ही तत्पर है तब उसके वास्तविक स्वरूप में कितना बल होगा, क्या इसकी कल्पना करना संभव है?**

बढ़ती हुई बेईमानी को देखकर हमारा दुर्बल मन कभी-कभी सोचता है कहीं ऐसा न हो कि इस संसार से धर्म का लोप हो जाय। अधर्म और असत्य का साम्राज्य न आ जाय, परन्तु यह धर्म के दुर्बल होने का लक्षण नहीं हमारी दुर्बलता की यह पहचान है। धर्म को हमारी आवश्यकता नहीं है, हमें धर्म की आवश्यकता है। जब हम दुर्बल होते हैं तब हमारा धर्माचरण धर्म की रक्षा करने के अन्दाज में होता है, तब हम ईमानदार होने के बजाय ईमानदार दिखने की चेष्टा करते हैं। ऐसा करते हुए दोनों ओर से घाटा उठाते हैं। बहुत सारे लोग जब यह कहते हुये पाये जाते हैं-भाई साहब हमने सारी उम्र ईमानदारी की और दु:खों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला तो समझना चाहिए इस व्यक्ति को ईमानदारी का सुख तो नहीं मिला बेईमानी करता तो कम से कम उस सुख से तो वञ्चित नहीं रहता। ऐसे लोग धर्म पर उपकार करते हैं और जीवन भर दु:ख उठाते हैं। **शास्त्र कहता है संसार में जो भी पाना चाहते हो उसे प्राप्त करने का क्रम एक ही होना चाहिए- सत्य, यश, श्री। सत्य आत्मा के लिए, यश समाज के लिये, श्री सांसारिकता के लिये है यदि इस क्रम को उलट दिया जाता है तो आत्मा की हानि होगी जो महती विनष्टि है इससे बचने का प्रयत्न करना ही मनुष्य का लक्ष्य है।**

यह सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म की लड़ाई संसार में कभी समाप्त नहीं होती। मनुष्य के प्रादुर्भाव से तिरोभाव तक सूर्य के उदयास्त की भांति निरन्तर चलने वाला संघर्ष, किन्तु कभी समाप्त नहीं होने वाला समझकर त्याज्य या उपेक्षणीय नहीं है। जिसने इस लड़ाई को लड़ा वह जीता है जो लड़ेगा वह जीतेगा जो नहीं लड़ेगा वह पराजित होगा। **मनुष्य को अपनी जीत के लिये अपने हिस्से की लड़ाई अवश्य लड़नी पड़ेगी और लड़नी चाहिए। सत्य की लड़ाई आत्मा और परमात्मा के द्वारा लड़ी जाने वाली है उसमें पराजय का प्रश्न ही नहीं उठता।**

जनता सदा धर्म और सत्य के लिये खड़ी रहती है। उप प्रधानमंत्री देवीलाल के नारों को सुनकर बेईमान जानते हुये भी ईमानदारी की आशा में उन्हें व उनके साथियों को चुना है-उन्हें स्मरण रखना चाहिए **लोकराज लोकलाज से चलता है। यह लोकलाज और कुछ नहीं आत्मानुभूति है। इसे झुठलाने से जनता नहीं हारेगी जनता ने जिसे उस वायदे के लिये जिताया वे गिरेंगे। धर्म तो कभी गिरता नहीं, हारता नहीं, निराश होता नहीं।** जनता धर्म है उसमें अनन्त शक्ति है। मरना और बचना तो वास्तव में सम्बद्ध व्यक्ति का होता है जैसा कि मनु महाराज कहते हैं-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽबधीत्।।

अप्रैल १९९०

कुछ तड़प–कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महर्षि दयानन्द की देन और इतिहास पर छाप- आर्यसमाज में आज बहुत कम ऐसे विद्वान्, लेखक व गवेषक हैं जो गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन करके आर्यसमाज के सिद्धान्तों तथा आर्यसमाज की देन पर लिखते व बोलते हैं। भाषा पर अधिकार होने से शब्द भण्डार के बल पर लम्बे-लम्बे लेख लिख देना बहुपठित व्यक्ति के लिये क्या कठिन है। परिणाम यह देखा गया है कि हमारे अधिकांश पर्वों पर वही पुरानी बातें लिखी जाती हैं। बहुत से सज्जन अपने लेख की प्रतियाँ सब पत्रों को भेज देते हैं। श्रम व तपस्या कितने करते हैं?

मैं कुछ समय पूर्व कहीं खोज के लिये निकला। महात्मा हंसराज से सम्बन्धित कुछ सामग्री हाथ लगी। महात्मा जी का एक लेख जो पहले कभी देखा था उसे फिर ध्यान से पढ़ा तो एक मार्मिक तथ्य हाथ लगा। महात्मा जी ने लिखा कि कभी लाहौर में राजा हरबंस सिंह (यह कौन थे? पता नहीं) की अध्यक्षता में पौराणिकों से बालविवाह विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। महात्मा जी ने न तो शास्त्रार्थ का सन्, संवत् बताया और न ही शास्त्रार्थ करने वाले आर्य तथा पौराणिक विद्वान् का नाम लिखा।

पौराणिक पण्डित ने किसी पोथी के प्रमाण से यह सिद्ध करने का दुस्साहस किया कि कन्या का विवाह उस समय कर देना चाहिये जब उसे अपने नंगेपन का बोध भी न हुआ हो । अब आज के युग में तो छः-छः वर्ष के बालक-बालिकायें नग्नता से भली-भांति परिचित हो जाते हैं, फिर भला क्या चार-पांच वर्ष की कन्याओं का भी विवाह कर दिया जाये? घोर विरोध का सामना करके आर्यसमाज ने युग की धारा बदली है। कुरीति-निवारण के अपने आन्दोलन में आर्यों ने बलिदान दिये। सिर फूटे। गोलियाँ खाईं। अभियोग चले। तब जाकर नया युग आया। सुधार और हिन्दू धर्म की दुहाई देते हुये कई संगठन खड़े हुये। क्या किसी ने इन घातक विचारों का विरोध किया? महात्मा जी का यह लेख सन् १९१६ से बहुत पहले कभी लिखा गया था। आर्यसमाज और नारी जागरण पर बोलने-लिखने वाले क्या महात्मा हंसराज वर्णित शास्त्रार्थ का उल्लेख करेंगे या वही कुछ उगलते रहेंगे जो रट रखा है?

योग की दुहाई और इतिहास की साक्षी- आज देशभर में योग तथा समाधि की बहुत चर्चा की जाती है। कोई योगी है, इस की परख कैसे हो? क्या मात्र भाषण देने वा आँखें बन्द करने से किसी को सिद्ध मान लिया जावे। देश अनाचार में डूबता जा रहा है। बाबे दुराचार के दोषी होने से जेलों में सड़ रहे हैं। बलात्कार की घटनायें पढ़-सुन कर रोना आता है। आये दिन योग के नये कीर्तिमान स्थापित किये जा रहे हैं।

महर्षि दयानन्द ने आत्मबल, विनम्रता, ईश्वर की सहाय को प्रार्थना-उपासना का फल बताया है। योग की नींव यम-नियमों पर है। इस कसौटी पर योगियों को कसिये। सत्य सामने आ जावेगा। अपरिग्रह जिसमें नहीं, सत्य और संयम जिसमें नहीं, ब्रह्मचर्य की मर्यादा का पालन न करने वाले लोभी, लम्पट, मायाधारी बाबे योगी कैसे?

भाई परमानन्द जी को **'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्'** यह मन्त्र बहुत प्यारा था। मृत्यु को जीतने के लिये वे इसी का पाठ किया करते थे। व्याख्यान के आरम्भ में इसी को वे बोला करते थे। हम कह सकते हैं उन्हें यह वेद मन्त्र सिद्ध हो चुका था। उन्हें फांसी-दण्ड सुनाया गया। फांसी दण्ड सुनकर कालकोठरी में पहले जैसे सोया करते थे, सो गये। अपनी दिनचर्या के अनुसार अगले दिन प्रातः प्रसन्नचित्त उठे और मस्ती से वेद मन्त्रों का पाठ करते, गाते हुये उन्हें यथापूर्व देखा गया।

क्रान्तिकारी पं. परमानन्द जी (झांसी) की कोठरी उनके ठीक सामने थी। वह सोच रहे थे आज देखेंगे कि भाई जी 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्' का पाठ कैसे करते हैं। अटल ईश्वर-विश्वासी मुनि महात्मा भाई परमानन्द जी को उसी मस्ती से प्रभु की भक्ति करते, वेद ऋचायें गाते देखकर पं. परमानन्द जी ने जान लिया कि पूज्य भाई जी सिद्ध पुरुष हैं। यह प्रसंग मैंने पं. परमानन्द जी के लेख में पढ़ा था। इसे भूल पाने का प्रश्न ही नहीं। पुलिस की

पकड़ से बच निकलने पर भी हमने आज के योगियों को रोते देखा है। सिरसा वाला बाबा तो रोता ही रहता है। आसाराम को भी रोते गिड़गिड़ाते सबने देखा। इन बोगस योगियों की पोल खुल गई है।

एक सिद्ध पुरुष का इतिहास- आर्यसमाज में यह दुष्प्रचार होने लगा है कि ऋषि दयानन्द के पश्चात् बस एक ही बाबा योगी बना है। वही सिद्ध पुरुष है। उसी की समाधि लगती है और वही समाधि लगवा सकता है। कोई-कोई एक-आध दूसरे महात्माओं का नाम ले देते हैं। बात वास्तव में यह है कि न तो ऋषि दयानन्द जी ने योग सिद्धियों का, समाधि का ढोल पीटा और न स्वामी श्रद्धानन्द जी ने और न महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने। ऋषि जी ने स्पष्ट लिखा है ''मैं ईश्वर नहीं, ईश्वर का उपासक हूँ।''

योग की आंधी तो मेरे देखते-देखते चल पड़ी है। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, स्वामी वेदानन्द जी महाराज दोनों कई बार योग साधना के लिये साधु महात्माओं के ज्ञात-अज्ञात आश्रमों में जाकर अभ्यास किया करते थे। अभी रुड़की में वेद प्रवचन करते हुये ईश्वर की उपासना पर बोलते हुये मैंने महाराजा स्वतन्त्रानन्द जी की सिद्धि तथा आत्मबल का एक प्रसंग सुनाया। जब लोहारु में मुनिराज पर लाठियों की वर्षा हुई तो आजन्म ब्रह्मचारी फिर भी न गिरा। तब कसाई सिपाहियों ने हमारे पूजनीय हृदय-सम्राट् के सिर पर कुल्हाड़े का टिका कर वार किया। गहरा घाव था। वे दिल्ली पहुँच गये। उन्हें आर्य नेता इर्विन अस्पताल ले गये।

डॉक्टर क्लोरोफॉर्म सुंघाकर अचेत करके घाव की चीरफाड़ करके टांके लगाना चाहते थे तो हमारे गुरुवर श्री स्वामी जी ने कहा, ''यह रहने दो। दुःख-सुख का भान मन से होता है। वर्षों से मन को साधने का उपदेश देते आ रहे हैं। आज देखने तो दो हमने अपने मन को कहाँ तक साधा-सम्भाला है।'' बड़े धीरज व शान्ति से प्रभु के प्यारे ने बिना क्लोरोफॉर्म सूंघे टांके सिलवा लिये। एक बार भी मुख से आह नहीं निकली। पास खड़े भक्तों में से एक आर्य नेता गहरे घाव को और टांकों की सिलाई को देखकर फफक-फफक कर रोने लगा।

रुड़की में यह प्रसंग सुनाते हुये मैं अपनी अश्रुधारा न रोक सका। श्रोताओं में कई आर्य पुरुषों के नयन सजल हो गये। महिलाओं को मैंने तब देखा नहीं था। कोमल हृदय आर्य ललनाओं के भी अश्रुकण गिरे ही होंगे। हमारे मान्य भजनोपदेशक पं. भीष्म आर्य जी ने अपने व्याख्यान में मेरी अश्रुधारा बहने की चर्चा की।

आर्य पुरुषो! महाराज में इतना आत्मबल! यह योग की सिद्धि, उपासना का फल नहीं तो क्या था? आज बोगस योगियों के कारण प्रभु के प्यारे सच्चे योगियों का अवमूल्यन हो रहा है। ढोंगियों ने भेड़ों को पीछे लगा रखा है। जो काम और लोभ के एक ही धक्के से ढह जाते हैं, वे बढ़-चढ़ कर योग पर प्रवचन करते हैं।

एक और योगनिष्ठ महात्मा का प्रसंग- बहुत पुरानी घटना है। चालीस वर्ष से भी अधिक हो गये होंगे। मैं दीनानगर दयानन्द मठ के कमरे में बैठा था। बारह बजने वाले थे, एक ब्रह्मचारी भागा-भागा आया और कहा, ''स्वामी जी महाराज (सर्वानन्द जी) ने आपको अभी बुलाया है। वे औषधालय के बाहर खड़े हैं।''

मैं फुर्ती से महाराज के पास पहुँच गया। समीप के एक ग्राम से एक सिख भाई हाँफता हुआ महाराज के पास आया खड़ा था। उसने कहा, ''ग्राम में दो परिवारों या दो पार्टियों में लड़ाई रक्तपात होने की सम्भावना है। कुछ जानें भी जा सकती हैं। ग्राम के सब सरदारों ने मुझे भेजा है, स्वामी जी को जैसे भी हो अति शीघ्र लाओ। मारकाट को वही रोक सकते हैं।''

स्वामी जी ने मुझे कहा, ''वे लोग मठ से आस लगाये बैठे हैं। मैं आपसे आकर बात करूंगा। यदि मेरे जाने से रक्तपात रुक सकता है तो मुझे जाना ही चाहिये। मेरा संन्यास धर्म यही सिखाता है।''

बिना अंगरक्षकों के, बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के हमारे पूज्य स्वामी जी, परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान भूखे-प्यासे भोजन के समय उस ग्राम को चल पड़े। सारा दिन भूखे रहे। दिन ढलते लौटे। उनके मुखमण्डल पर बहुत शान्ति और मुस्कान करवटें ले रही थी। बहुत समय तो लगा। द्वेष की अग्नि को बुझाकर, प्रेम-सुधा-वर्षा कर मुनिवर लौटे। ग्रामवासी न तो पुलिस बुलाने गये और न किसी राजनेता की शरण में गये। यदि वहीं विवाद न

सुलझता तो क्या महाराज की हड्डी पसली वहाँ न तोड़ी जाती। आग में कूदने का यह साहस ईशोपासना व योग का फल था या नहीं? जिन्होंने महाराज को निकट से देखा है वे सब जानते हैं जीव होने के कारण उनमें कोई न्यूनता हो सकती है, परन्तु यम-नियमों की सिद्धि में स्वामी जी की सत्तर वर्ष की साधना का फल प्रत्यक्ष उनमें देखा जा सकता था। हमें अभिमान है कि हमने एक सच्चे योगी के दर्शनों का, सत्संग का लाभ उठाया। आज के कामांध, धनलोलुप तथा सत्य का गला काटने वाले बोगस योगियों के युग में सत्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के प्रचार की विशेष आवश्यकता है।

रुड़की समाज- कुछ मास पूर्व कहीं एक सज्जन ने बताया कि रुड़की समाज के नये प्रधान बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी और समर्पित ऋषिभक्त हैं। आप एक बार वहाँ आयें। मैं लम्बे समय के पश्चात् वहाँ गया। एक-एक भाई ने श्री विनोद मलिक जी प्रधान की विनम्रता व सेवा की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मैंने किसी के द्वारा परिचय करवाये बिना ही श्री प्रधान जी को पहचान लिया। आर्यसमाज की करोड़ों रुपये की सम्पत्ति की आपने रक्षा की है। आर्यसमाज को मार्किट, स्कूल, शादीघर, विवाह-व्यापार से बचाकर आपने बड़ा यश पाया है। ऐसे सहस्रों सपूत धर्मयोद्धा पवित्रात्मा समाज को चाहिये। उनके सहयोगी, समाज के सेवक और सेविका भी बहुत लगनशील व सेवा भाव वाले हैं। आर्यो! कब्जाधारियों विवाह तथा शिक्षा-व्यापारियों से समाज मन्दिरों की सर्वत्र रक्षा करो।

मॉरिशस से एक पत्र- आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक श्रीमान् सोनेलाल जी ने मॉरिशस से परोपकारिणी सभा को एक पत्र भेजकर इसे मेरे पास भेजने के लिये कहा। आपने महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन चरित्र पढ़कर दिल खोलकर ग्रन्थ के लेखन में हमारी खोज व श्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है कि कई-कई प्रसंग और अध्याय कई-कई बार पढ़े हैं। लेखक ने थोड़े से शब्दों में गागर में सागर भर दिया है। उनकी शुभकामनाओं, पवित्र भावनाओं के लिये मैं उनका आभार मानता हूँ। ऐसे ऋषिभक्तों का प्यार मेरे लिये टॉनिक है। प्रभु से प्रार्थी हूँ-

'जीवन के अन्तिम श्वास तक यह लेखनी चलती रहे'

मेरे साहित्यिक जीवन का स्वर्णिम वर्ष- परोपकारी के सभी प्रेमियों, परोपकारिणी सभा तथा सब ऋषिभक्तों की शुभकामनाओं और आशीर्वाद के फलस्वरूप वर्ष २०१८-१९ मेरे साहित्यिक जीवन का स्वर्णिम और स्मरणीय वर्ष होगा। एक छोटे से ग्राम में जन्मे इस दुबले-पतले अबोध बालक को आर्यसमाज ने क्या से क्या बना दिया। "मेरा रोम-रोम नोच लिया जाये, मैं पेट के बल रेंग-रेंग कर चलूँ तो भी ऋषि दयानन्द के ऋण से उऋण नहीं हो सकता।" स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के ये शब्द मेरे श्वास-श्वास में आज सुनाई देते हैं। आर्यसमाज के इतिहास में पहली बार किसी साहित्यकार द्वारा लिखित इतनी संख्या में कई नये-नये और पुराने ग्रन्थों का आर्यसमाज इस वर्ष प्रकाशन करके मुझे अपने प्यार से लाद रहा है। मेरे पूर्वज जिनसे मैंने सब कुछ सीखा, जिन्होंने मुझे गढ़-गढ़ कर बनाया उन्हीं के पुण्य प्रताप से मुझे यह गौरव प्राप्त हो रहा है। देश-विदेश के आर्य भाई प्रायः पूछते रहते हैं, क्या-क्या छपकर आ रहा है?

मेरा उत्तर यही रहा है देखते जाओ तथापि अब कुछ परोपकारी द्वारा बताता हूँ। 'स्वामी श्रद्धानन्द जीवन-यात्रा' अभूतपूर्व स्वामी जी का सबसे बड़ा जीवन चरित्र इस समय प्रेस में है। पढ़कर अपने-बेगाने दंग रह जायेंगे। 'ऊर्जा के स्रोत अमर धर्मवीर' भी प्रेस में शीघ्र चला जायेगा। प्रूफ पढ़े जा रहे हैं। 'गंगा ज्ञान सागर' चारों भाग गोविन्दराम हासानन्द इस वर्ष फिर प्रकाशित करेगा। पहली बार किसी आर्य दार्शनिक की ग्रन्थमाला का मात्र १८ वर्ष में तीसरा संस्करण छप रहा है। 'अखण्ड संग्राम' एक छोटी पुस्तिका आ रही है। 'आदर्श माता-पिता' का नया संस्करण प्रेस में है। 'कुल्लियाते आर्य मुसाफिर' का पहला भाग शीघ्र प्रेस में जायेगा। दूसरे पर कार्य आरम्भ हो जायेगा। लौह पुरुष भी छपने वाला है। यह मेरी उपलब्धि नहीं। यह मेरे ऋषिभक्त पिता के आशीर्वाद का फल है। यह पं. लेखराम जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं. त्रिलोकचन्द्र शास्त्री, महाशय कृष्ण जी और महात्मा आनन्द स्वामी महाराज की तपस्या तथा कुर्बानियों का चमत्कार समझा जावे। मैं दुर्बलताओं को ढोता निरन्तर आगे बढ़ रहा हूँ तो इसका श्रेय इन्हीं को जाता है। आर्यसमाज की वर्तमान पीढ़ी के दीवाने समर्पित आर्य युवक भी इस स्वर्णिम इतिहास के लिये बधाई के पात्र हैं।

आर्यसमाज का स्थापना-दिवस

पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

किसी भी विचार या समाज की प्रगति के लिये यह अनिवार्य है कि वह अपने भूतकाल का सिंहावलोकन करता रहे अन्यथा मार्ग से भटकने या उद्देश्यों की पूर्ति में शिथिलता आने की संभावना प्रबल हो जाती है।

इसके लिये विद्वानों के विचारों का कोई विकल्प नहीं है। इसी प्रकार के सिंहावलोकन के लिये प्रेरित किया दार्शनिक लेखक पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय ने। 'आर्यवीर' पत्रिका के मार्च-१९६० अंक में प्रकाशित यह लेख आर्यसमाज के स्थापना दिवस पर लिखा गया था। लेखक ने जिन समस्याओं की ओर तत्समय ध्यानाकर्षण किया था, आज भी वही समस्याएँ हमारे सामने मुँह बाये खड़ी हैं और उन समस्याओं के कारण भी ज्यों के त्यों, बल्कि और अधिक स्वच्छन्दता से फल-फूल रहे हैं। लेख के अन्त में पूज्य उपाध्याय जी ने आर्यसमाज की वर्तमान कार्य-पद्धति पर भी चिन्ता व्यक्त की है, जो कि जुलूस और सहभोज तक ही सिमटकर रह गई है। आशा है सुधी आर्यजन इस पर अवश्य चिन्तन करेंगे।

-सम्पादक

सन् १९६० ई. को अप्रैल मास में आर्यसमाज को स्थापित हुए ८५ (तत्समयानुसार) वर्ष हो चुकेंगे। इनमें से आठ वर्ष आचार्य के जीवन काल में व्यतीत हुए और ७७ (तत्समयानुसार) वर्ष पीछे। ७७ वर्ष अनुभव-प्राप्ति के लिए बहुत होते हैं, यदि लोगों की प्रवृत्ति अनुभव-लाभ करने की ओर हो। एक तो आर्यसमाज का अन्तिम ध्येय है अर्थात् मानव -समाज की वह अवस्था जहाँ हम इसको ले जाना चाहते हैं। इसका विवेचन हमारे धर्मग्रन्थों में स्पष्टतया दिया है और ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख किया है, परन्तु उस ध्येय तक पहुंचने के लिए मार्ग चाहिए। यात्री यात्रा के भिन्न-भिन्न स्थानों में होता है। यह माना कि पहुँचना एक ही स्थान पर है, परन्तु जहाँ से चलना है वे सब स्थान एक ही दूरी पर तो नहीं है और न नाक की सीध एक मार्ग है जिस पर चलने से हम अभीष्ट स्थान पर पहुँच सकते हैं। जो लोग केवल अभीष्ट स्थान पर ही ध्यान देते हैं और यात्रियों की योग्यता का विचार नहीं करते, वे यात्रियों को सफल बनाने में सहायक नहीं हो सकते।

मैं आर्यसमाज के पिछले कामों और संस्थाओं की सफलता के विषय में बड़े चित्ताकर्षक लेख पढ़ता रहता हूँ। इनमें से अधिकतर काव्यमयी भाषा में अतिशयोक्ति-पूर्ण गुणगान ही होते हैं। इनमें अधिकतर दूसरे मतों, दलों या संस्थाओं की निर्बलताओं को बहुत बड़ा करके दिखाया जाता है और अन्त में यह परिणाम निकाला जाता है कि आर्य संस्थाओं में अधिक गुण हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जनता को धोखा होता है और हमको भी धोखा ही होता है, क्योंकि हमारी निर्बलतायें दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं। कल्पना कीजिए कि सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व हमने एक संस्था खोली। उस समय देश की परिस्थिति भी और थी और हमारा ज्ञान भी और था। हमने काम करना आरम्भ किया। बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ कीं। बहुत-सी आशाएं स्वयं बाँधीं और दुनिया को बँधाईं। एक कार्यक्रम बनाया, बड़ी-बड़ी आशाओं के चित्र खींचे गए , परन्तु मनुष्य अल्प है, आगे कठिनाइयाँ आईं। विफलताएँ हुईं। मार्ग को बदलने की आवश्यकता हुई। परन्तु हमने मार्ग नहीं बदला। परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाज का संसार में आज वह स्थान नहीं है जो अस्सी वर्ष (तत्समयानुसार) पहले था। अभी मैं एक लेख पढ़ रहा हूँ। उसमें मोनियर विलियम्स द्वारा जो पं. श्याम जी कृष्ण वर्मा के संस्कृत, ग्रीक, लैटिन के पांडित्य की प्रशंसा की गई थी, उसका उल्लेख है और उससे यह सिद्ध किया गया है कि जिस पद्धति से वर्मा जी ने शिक्षा प्राप्त की थी वह सर्वोत्कृष्ट थी, परन्तु व्यावहारिक रूप में यह नहीं बताया गया कि गुरु कितना योग्य था, शिष्य कितना उग्र-बुद्धि था और शिक्षा की रीति क्या थी। आर्यसमाज के शिक्षा-विशेषज्ञों ने स्वतन्त्रतापूर्वक बैठकर यह नहीं सोचा कि आजकल के साधारण विद्यार्थियों की

अवस्था को देखकर और देशकाल की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर ऐसा कौन-सा शिक्षाक्रम रखना चाहिए जो व्यावहारिक रूप से लाभदायक सिद्ध हो सके। हमारे संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् केवल कौमुदी पर घोटे लगवाकर ही अपने को सन्तोष दे लेते हैं, परन्तु आज तक कोई एक पुस्तक ऐसी नहीं बनाई जो कौमुदी का स्थान ले सकती। अत: आर्य संस्थाओं में भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वही पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं और बहुत से पंडित निन्दा के भय से चुपचाप अन्यथा करते हुए भी कहने का साहस नहीं करते। प्रश्न आदर्श का है, आदर्श तक पहुंचनें के मार्ग का है। आदर्श से तो धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं। यह तो ठीक ही है कि **''नहि सत्यात् परो धर्मः''**। परन्तु दैनिक जीवन से असत्य को हटाया कैसे जाय?

आर्ष-ग्रन्थों का ज्ञान आवश्यक है। यह है आदर्श। परन्तु जब ऋषियों ने आर्ष-ग्रन्थ रचे थे और अपने शिष्यों को पढ़ाते थे तब शिष्यों की योग्यता क्या थी? समाज की अवस्था क्या थी? आप इन प्रश्नों को आँख से ओझल कैसे कर सकते हैं? उदाहरण के लिये जब महर्षि पाणिनि ने **अष्टाध्यायी** रची थी या कात्यायन ने उस पर **वार्तिक** रचा था या पतंजलि ने **महाभाष्य** बनाकर उसकी दुरूह बातों का स्पष्टीकरण किया था तो क्या ये ग्रन्थ व्याकरण शास्त्र के उच्चतम ग्रन्थ थे या छोटे विद्यार्थियों की पाठशालाओं की पाठ्यपुस्तकें। चाहे गणित हो चाहे इतिहास, चाहे भौतिक विज्ञान, चाहे व्याकरण प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण और गंभीर विद्यायें है। इनकी उच्चतम पुस्तकें बच्चों को आरम्भिक काल में पढ़ाई नहीं जा सकतीं और न कोई शिक्षा-विज्ञान का जानने वाला ऐसा दुस्साहस करेगा कि एम.एस.सी. या डी.एस.सी. के स्तर की पुस्तकों का आरम्भिक कक्षा में पाठ आरम्भ कर दे, परन्तु हमारी संस्थाओं में इस बात पर विचार ही नहीं होता। यह ठीक है कि पौराणिक पाठशालाओं में तो और भी अंधाधुन्धी थी, अत: सैंकड़ों वर्ष पढ़ाकर हम वैदिक संस्कृति के अध्यापन में कुछ प्रगति नहीं कर सके, परन्तु हम भी तो लगभग वैसे ही हैं। हमने न अधिक सीखा, न अधिक भूले, न हमने साहस करके यह देखने की कोशिश थी कि जो दुकान हमने ७७ (तत्समयानुसार) वर्ष पहले खोली थी उनमें कितना लाभ हुआ? बाजार की क्या दशा है? और दुकानदार कितने आगे निकल गये? संसार क्या चाहता है?

आर्यसमाज की स्थापना तिथि पर हम जुलूस तो निकालेंगे ही, सभी निकालते हैं। जैनियों के जुलूस, सिक्खों के जुलूस, हमारे भी जुलूस निकलेंगे। लैक्चर भी होंगे, भजन भी। बाहर के लोग भी निमन्त्रित होकर शिष्टाचार से हमारी प्रशंसा कर जाएंगे। हमारे शायर और कवि अपनी लम्बी-चौड़ी उड़ाने भी मारेंगे। यह सब अच्छा है और होना चाहिये, परन्तु भिन्न-भिन्न संस्थाओं के संचालकों को यह भी तो सोचना चाहिए कि संस्थाओं की क्या अवस्था है और आगे उनको कैसे चलाना चाहिये। जो केवल आदर्श पर ही आँख रखते हैं उनकी तो यही दशा है-

अंजुम शनास को भी खलल है दिमाग का।
पूछो अगर जमीं की कहे आस्मां की बात।

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता।
- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१

जब तक मनुष्य सुख-दु:ख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें। **-महर्षि दयानन्द, यजु.,भा ५.४०**

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वप्नानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अत: दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर **'परोपकारिणी सभा'** अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

समिति: समानी

तपेन्द्र वेदालंकार, आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त)

३० अक्टूबर सन् १८८३ की अमावस्या को आर्यजन कभी भूल नहीं पायेंगे। इसी दिन शाम छह बजे महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपनी देह त्याग की थी। इसी दिन आर्य जाति अनाथ हुई थी। इसी दिन आर्यसमाज का सर्वस्व लुट गया था। आर्यसमाज का सदमा तो असह्य था ही, आर्येतरो-पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी-प्रदीप', सर सैय्यद अहमद खाँ ने 'कोहिनूर', थियोसोफिस्टों ने अपने पत्र 'थियोसॉफिस्ट', प्रो. मैक्समूलर ने 'पालमाल' गजट-अनेकों विद्वानों ने तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उनके निधन पर अपने मार्मिक उद्गार प्रकट किये थे। किसी ने प्रसिद्ध सुधारक बताया, तो किसी ने विद्यामयी लहरी और हितोपदेश धारा से तृप्त करने वाला। किसी ने निहायत नेक व दरवेश सिफ्त, बेनजीर शख्स बताया, तो किसी ने महान् आत्मा व महान् पुरुष। पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति जी के शब्दों में, ''उस समय आर्यसमाज और आर्यसमाजियों को एक दयानन्द का भरोसा था। कोई झगड़ा हो तो वही निपटायें, शास्त्रार्थ हो तो वही पहुँचें, उत्सव की शोभा उन्हीं से हो-सारांश यह कि समाज का सर्वस्व केवल वही थे। आर्यसमाज में जो मातम की घटा छा गयी, वह यथार्थ ही थी।'' मेरठ के 'आर्य समाचार' ने लिखा था-

रो रो ए बदबख्त आर्यावर्त खूब दिल खोल कर रो ले।
आज तेरी फजलियत का सूरज गरुब हो गया।।

परन्तु ऋषि की मृत्यु का गम भी ऋषि के उपदेशों पर हावी नहीं हो सका। आर्य जन-जिन्होंने ऋषि दयानन्द को सुना था, दर्शन किये थे, उनमें गम की भावनाओं का नहीं अपितु समाज-सुधार के काम को आगे बढ़ाने का ज्वार उफन रहा था। ऋषि के अधूरे कार्य को पूरा करने का जुनून उनमें हिलोरें मार रहा था और शायद यही कारण था कि मेरठ के 'आर्य समाचार' अनुसार सन् १८८३ में ७९ शहरों में आर्यसमाजें थीं जबकि लाहौर की 'आर्य-पत्रिका' अनुसार सन् १८८५ में आर्य समाजों की संख्या २०० हो गयी थी। यह उस स्थिति में था जब आर्य प्रतिनिधि सभाएं नहीं बनी थीं, लाहौर, मेरठ व बम्बई आर्यसमाजें ही गढ़ मानी जाती थीं। उस समय प्रत्येक आर्य उपदेशक था, प्रत्येक आर्य भजनोपदेशक था, प्रत्येक आर्य पुरोहित था, प्रत्येक आर्य शास्त्रार्थ महारथी था- सब कुछ वही था। इस समय स्वामी आत्मानन्द जी, स्वामी ईश्वरानन्द जी, महता कृष्णरामजी श्री इच्छाराम जी, स्वामी ब्रह्मानन्द जी, ब्र. रामानन्द जी, चौ. नवलसिंह जी आदि अनेकों आर्यजनों ने अपने गुरु ऋषि दयानन्द के उपदेशों की ज्योति को न केवल जन-जन में जलाये रखा बल्कि दो साल के अन्दर-अन्दर ही दो-तीन गुणा आर्यसमाजों की स्थापना कर दी। उसके बाद आर्यसमाजों की संख्या तथा वैदिक धर्म का प्रचार अनेकों महात्माओं, उपदेशकों, विद्वानों, शास्त्रार्थमहारथियों, भजनोपदेशकों, आर्यजनों, नेताओं की बदौलत आगे से आगे बढ़ता गया तथा विश्वधरा के अन्य सम्प्रदायों के विचारों पर दृश्य या अदृश्य छाप छोड़ता गया, भारतीय जन-जीवन में नैतिक मूल्यों की-वैदिक मान्यताओं की स्थापना करता चला गया।

आर्यजनो! उस काल में भी आर्यजनों में मतभेद हुए होंगे, रहे होंगे, परन्तु वहाँ मतभेद हावी नहीं थे बल्कि ऋषि के मिशन को पूरा करने की इच्छा बलवती थी। तत्समय भी व्यक्तिगत महत्त्वाकाक्षाएं आड़े आयी होंगी, परन्तु वे ऋषि-ऋण के सामने टिकी नहीं थीं। उस समय भी सिद्धान्तों की असहमति हुई होंगी पर उन्होनें प्रचार-कार्य को धीमा नहीं पड़ने दिया था।

डी.ए.वी. कॉलेज सम्बन्धी कई बिन्दुओं पर पं. गुरुदत्त जी के मतभेद होते हुए भी, असन्तोष होते हुए भी समाजों में डी.ए.वी. कॉलेज के लिए अपील करने का काम पण्डित जी के ही सुपुर्द था।[१] ६ मार्च १८९७ को पं. लेखराम जी आर्य पथिक का बलिदान हुआ। श्मशान भूमि में महात्मा मुंशीराम जी ने कहा था, ''हम सबको चाहिये कि हम वीर की चिता के समीप खड़े होकर यह प्रतिज्ञा करें कि आपस की फूट को हटाकर प्रेमपूर्वक मिलकर काम करेंगे...।[२]'' आज भी सभी आर्य महर्षि का ही कार्य कर रहे हैं। सबके मन में **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** की भावना हिलोरें ले रही

हैं। सभी को वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की चिन्ता है। सभी ऋग्वेद के मन्त्र '**समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्**' पर श्रद्धा रखते हैं। सभी एक अच्छे समाज की संरचना का स्वप्न लिये हुए हैं। सब ऋषि-ऋण से उऋण होना चाहते हैं। सब परोपकार करना चाहते हैं। सब अध्यात्म की उन्नति देखना चाहते हैं। सभी वैदिक विचारधारा अनुसार मानव-निर्माण के लिए कृतसंकल्प हैं। सबका उद्देश्य एक है। सबका गन्तव्य एक है। सबका लक्ष्य एक है। सबका गुरु एक है। सभी अपने-अपने ढंग से, अपनी-अपनी क्षमता से कार्य कर रहे हैं। महर्षि के देहावसान के बाद सभाएं नहीं थीं, परन्तु महर्षि का प्रभाव इतना था कि निराशा दूर तक नहीं थी फलतः समुचित संगठन न होते हुए भी आर्यजनों ने अविस्मरणीय कार्य किया। आज आर्यसमाज का संगठन है, प्रतिनिधि सभाएं हैं, सार्वदेशिक सभा (सभाएं) हैं, कई ऐसी संस्थाएं हैं जो समर्थ भी हैं तथा ऋषि के कार्य में सन्नद्ध भी हैं। आज की स्थिति में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार-आर्यसमाज की उन्नति के लिए योजनाबद्ध व और अधिक व्यवस्थित रूप से, एकता के साथ कार्य किये जाने की महती आवश्यकता है। व्यक्तिशः उत्साह व ऋषिप्रेम से आर्यजन जो कार्य कर रहे हैं इससे उनको सम्बल भी मिलेगा तथा सभाओं के प्रचार कार्य में भी अचिन्तनीय गति आवेगी। ऋषि का आदेश व आर्यजनों का सपना शीघ्रता से फलीभूत हो सकेगा।

आर्यजनो! एकता की रस्सी से बड़े-बड़े असत्य के हाथी बाँधे जा सकते हैं। एक अकेले को वृक्ष कहा जाता है जिस पर आते-जाते लोग पत्थर मार कर फल व लकड़ी तोड़ते रहते हैं, अवसर मिले तो काटकर पलंग बना लेते हैं, उसका अस्तित्व ही मिट जाता है। वही पेड़ जब इकट्ठे होते हैं तो उसे वन कहा जाता है, उसमें घुसते लोग डरते हैं, लकड़ी फल लेते भी हैं तो भी वन का अस्तित्व सहजतया समाप्त नहीं कर सकते, उसमें नये बीज पैदा होकर पेड़ बनने की परम्परा चलती रहती है, वन घना रहता है तथा फैलता भी रहता है। आज आर्यसमाज के बिखरे हुए आर्यों को जोड़ने की आवश्यकता है, आज आर्यजनों की एकता की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है। आज आर्यजनों को पेड़ से, छोटी वाटिका से वन बनने की आवश्यकता है और इसके प्रयास ऊपर से शुरू करने होंगे। जैसा हमारे अग्रज-बड़े आचरण करेंगे वैसा ही अनुकरण हम सामान्य आर्यजन करेंगे। आज किसी से छुपा नहीं कि हम आर्यों में -हमारी संस्थाओं में एकता है भी तो उतनी नहीं, वैसी नहीं जैसी अभिप्रेत है। एक ही संस्था की एक से अधिक संस्थाएं अस्तित्व में आ गयीं। आर्यों में नीचे तक भी यह विभाजन दृष्टिगत होने लगा जो वरणीय भी नहीं कहा जा सकता तथा आदर्श भी नहीं हो सकता। अतः आर्य संस्थाओं के अधिकारीगण आपस में बैठकर, चर्चा कर, गिले-शिकवे दूर कर एकता के सूत्र में बंधें। जो मामले न्यायालयों में चल रहे हैं उन्हें आपसी सद्भाव से तय कर लें। जो मतभेद हैं उन्हें सौहार्दपूर्ण वातावरण बना कर दूर कर लें। मतभेद हो सकते हैं तथा होंगे भी, होते रहेंगे-क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि बाप-बेटे के, पति-पत्नि के, पिता-पुत्र के, भाई-भाई के, भाई-बहन के भी शत-प्रतिशत विचार आपस में नहीं मिलते, मिल भी नहीं सकते क्योंकि सत्त्व, रज, तम के जिन कणों से मिलकर हमारे शरीर बने हैं वे किन्हीं दो में एक समान बनाये ही नहीं गये। सबके संस्कार एक समान हो ही नहीं सकते। अतः मतभेद तो हो लें, परन्तु मन-भेद ना हो। पक्ष-विपक्ष सिद्धान्त में हों, परन्तु आर्यसमाज में पक्ष-विपक्ष न हों। अतः संस्थाओं के पदाधिकारीगण अपने अतीत के गिले-शिकवे भुलाकर एक जाजम पर बैठें और कोर्ट-कचहरी में लम्बित मामलों को सुलझा लें तो बड़ा उपकार होगा। इससे आर्यजनों का तन-मन-धन सम्बन्धी सामर्थ्य मुकदमों आदि में न लगकर पूर्णतः आर्य सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में लगेगा। एकता से प्रचार होगा तो प्रचार भी कई गुणा बढ़ेगा, परिणाम भी कई गुणा बढ़ेंगे।

कुछ लोगों का यह विचार हो सकता है कि यह कार्य नहीं हो सकता, क्योंकि खाई बहुत गहरी है। मैं ऐसा नहीं मानता, अधिकांश आर्यजगत् भी ऐसा नहीं मानता। न तो खाई गहरी है और न ही यह कार्य असम्भव है। आपसी संवाद ऐसी चीज है जिससे बड़े से बड़ा विवाद भी हल हो सकता है, आर्यों के विवाद तो बड़े हैं ही नहीं। बस आवश्यकता है कि मन में विवाद खत्म करने का जज्बा

हो तथा साफ मन से, महर्षि के बताये लक्ष्य पर नजर रखते हुए-दुराग्रह हटाकर, सौहार्द बनाकर वार्ता की जावे तथा जहाँ सिद्धान्त की हानि न हो वहाँ उदारता दिखायी जावे। सिद्धान्त से समझौता तो करणीय है ही नहीं।

परोपकारिणी सभा, सार्वदेशिक व प्रतिनिधि सभाएं इसमें पहला पग बढ़ा सकती हैं। ईश्वर सद्प्रयासों के अच्छे परिणाम देता ही है, यह हम आर्यों का विश्वास है।

आर्य जाति को सोते से जगाने के लिए ऋषि ने कितनी बार विष खाया, अपने प्राणों की आहुति दे दी। पं. लेखराम आर्य पथिक अपने शरीर पर दर्जनों घाव सहकर भी यही बोले कि तहरीरी काम बन्द नहीं होना चाहिये। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज धर्म-प्रचार के लिए गोलियाँ खाकर शहीद हो गये। अनेकों आर्यवीर वैदिक पथ को कंटकविहीन करते-करते अपना सर्वस्व बलिदान कर गये। उन आर्यों के वंशज हैं हम, निराशा हमारा रास्ता नहीं रोक सकती। कठिनाइयाँ हमें उलझा नहीं सकतीं। हार हमें हरा नहीं सकती और फिर ऋषि का ऋण चुकाना भी तो हमारी जिम्मेदारी है। बस पुरुषार्थ करने की देर है क्योंकि-

अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाऽऽसुमर्हति।

टिप्पणी - १, २ पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इस से गृहस्थजन विशेषकर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२४

विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे बुद्धि, बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४२

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन **समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर** आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

– मन्त्री

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

१. **वेदपथ के पथिक** (आचार्य धर्मवीर स्मृति ग्रन्थ)

पृष्ठ संख्या-२६४

मूल्य-रु. २००/-(आधे मूल्य पर उपलब्ध)

परोपकारिणी सभा के यशस्वी प्रधान डॉ. धर्मवीर जी का जीवन सत्य के लिये संघर्षपूर्ण रहा है। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने ईश्वर, वेद और धर्म को अपने जीवन से तनिक भी अलग नहीं होने दिया और यही विशेषता रही, जिसके कारण वे एक आदर्श आचार्य, आदर्श नेता, आदर्श लेखक, आदर्श सम्पादक एवं आदर्श उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन की कही-अनकही घटनाएँ हमें भी प्रेरणा दें, इस दृष्टि से ये ग्रन्थ अवश्य पठनीय है। जिन्होंने डॉ. धर्मवीर जी को निकट से देखा है, जो उनके जीवन की घटनाओं के साक्षी रहे हैं, उनके संस्मरण इस कर्मयोगी के जीवन की बारीकियों को उजागर करते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में चित्रों के माध्यम से भी उनके जीवन की कुछ झलकियों को दर्शाया गया है।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती के कुछ हस्तलिखित पत्र-

पृष्ठ संख्या-३३६ **मूल्य**-रु. २००/-

महर्षि दयानन्द, उनके उद्देश्यों, कार्यों, योजनाओं एवं व्यक्तित्व को समझने में उनके द्वारा लिखे पत्र उतने ही उपयोगी हैं, जितना कि उनका जीवन-चरित्र। ये पत्र महर्षि के हस्तलिखित हैं। पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें मूल-पत्रों की प्रतिलिपि दी गई है और साथ ही वह पत्र टाइप करके भी दिया गया है। यह पुस्तक विद्वानों के दीर्घकालीन पुरुषार्थ का फल है। जनसामान्य इससे लाभ ले-यही आशा है।

३. अंग्रेज जीत रहा है-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-२२२ **मूल्य**-रु. १५०/-

इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के 'भाषा और शिक्षा' विषय पर लिखे गये ४२ सम्पादकीयों का संकलन किया गया है। 'परोपकारी' पत्रिका में लिखे गये इन सम्पादकीयों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की माँग समय-समय पर उठती रही है। अत: पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। डॉ. धर्मवीर जी का चिन्तन बेजोड़ था। वे जिस विषय पर जो भी लिखते वह अद्वितीय हो जाता था। उनके अन्य सम्पादकीयों का प्रकाशन भी प्रक्रिया में है। पुस्तक का आवरण व साज-सज्जा अत्याकर्षक है।

४. स्तुता मया वरदा वेदमाता-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१३५ **मूल्य**-रु. १००/-

वेद ईश्वर प्रदत्त आचार संहिता है। वेद की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है और वही धर्म है, इसलिये मानव मात्र की समस्त समस्याओं का समाधान वेद में होना ही चाहिये। वेद के कुछ ऐसे ही सूक्तों की सरल सुबोध व्याख्या ही इस पुस्तक में की गई है। पुस्तक की भाषा इतनी सरल है कि नये-से नये पाठक को भी सहज ही आकर्षित कर लेती है। व्याख्याता लेखक आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के गहन आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक चिन्तन व अनुभवों के परिणामरूप यह पुस्तक है।

५. इतिहास बोल पड़ा-

लेखक - प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

पृष्ठ संख्या-१५९ **मूल्य**-रु. १००/-

इस पुस्तक में इतिहास की परतों से कुछ दुर्लभ तथ्य निकालकर दिये गये हैं, जो कि आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के गौरव का बखान करते हैं। पुस्तक के लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु हैं। ऋषि के समय में देश-विदेश से छपने वाले पत्र-पत्रिकाओं के उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये हैं।

६. बेताल फिर डाल पर

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१०४ **मूल्य**-रु. ६०/-

डॉ. धर्मवीर जी की हॉलैण्ड एवं अमेरिका यात्रा का विवरण एवं अनुभव इस पुस्तक में है। विदेश में आर्यसमाज की स्थिति, कार्यशैली, वहाँ की परिस्थितियाँ एवं विशेषताओं को यह पुस्तक उजागर करती है। यायावर प्रवृत्ति के विद्वान् आचार्य धर्मवीर जी की यह पुस्तक एक प्रचारक के जीवन पर भी प्रकाश डालती है।

७. लोकोत्तर धर्मवीर-

लेखक - तपेन्द्र वेदालंकार,

पृष्ठ संख्या-४४ **मूल्य**-रु. २०/-

तपेन्द्र वेदालंकार (सेवानिवृत्त आई.ए.एस.) ने इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनसे धर्मवीर जी के महान् लक्ष्यों व तदनुरूप कार्यशैली का पता चलता है। इस लघु पुस्तक से प्रेरणा लेकर प्रत्येक आर्य ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने में उत्साहित हो-यही आशा है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

कर्मदेह, उपभोगदेह और उभयदेह

–महात्मा चैतन्यस्वामी

क्रतु का अर्थ है कर्म करने वाला अर्थात् व्यक्ति को सदा कर्मशील बने रहना चाहिए। वेद हमें यही प्रेरणा देता है–

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(यजु. 40–2)

हे मनुष्य! (इह) इस लोक में (**कर्माणि कुर्वन् एव**) कर्मों को करते हुए ही तूने जीना है, (**शतं समाः जिजीविषेत्**) तू सौ वर्ष जीने की कामना कर, (**एवं त्वयि इतः अन्यथा न अस्ति**) कर्म करते हुए सौ वर्ष जीना ही तेरे जीवन का एकमात्र नियम है, और कोई अन्य नियम नहीं मगर (**न कर्म लिप्यते नरे**) इन कर्मों में उलझ नहीं जाना बल्कि विरत होकर सदा कर्मशील बने रहना। जीव कर्म करने में तो स्वतन्त्र है मगर फल भोगने में वह परतन्त्र है, क्योंकि कर्मों का फल तो न्यायकारी परमात्मा ने देना है। इसलिए इस कर्म-स्वतन्त्रता का लाभ उठाकर सदा कर्मशील बने रहना चाहिए और ये कर्म निष्काम भाव से करने चाहिए। यजुर्वेद में ही अन्यत्र जीव को क्रतु कहा है– **ओ३म् क्रतो स्मर** (यजु. ४०–१५)। श्रीकृष्ण जी भी कहते हैं– **अहं क्रतुरहं यज्ञः** (गीता ९–१६)। गीता में अन्यत्र यह भी कहा गया है कि बिना कर्म के तो व्यक्ति एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकता है। अतः कर्म तो करने ही हैं मगर यदि व्यक्ति के द्वारा पुण्यकर्म किए जाएं तो इससे वह निष्काम–कर्मी और सुक्रतु बन जाता है।

वेद में सुक्रतु बनने की प्रेरणा दी गई है और साथ ही प्रक्रिया बताई गई है–

ओ३म् त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्, मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः

(सा. १०१५)

मन्त्र में सुक्रतु बनने के लिए मुख्यतः पहली बात कही गई कि–**त्रीणि त्रितस्य धारया**, जो व्यक्ति जीवन में तीन बातों को धारण कर लेता है, वह सुक्रतु बन जाता है। ऐसी बहुत सी तीन बातें हैं, मगर यहां हम कर्मदेह, उपभोगदेह और उभयदेह की चर्चा करेंगे। वेद में आया है–

ओम् पुरुषऽएवेदꣳसर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥

(यजु. ३१–२)

अर्थात् वह परमेश्वर ही इन सारे कर्मानुसार ग्रहीत जन्म वाले भूतों को और जो अब समीप भविष्य में ही जन्म ग्रहण करेंगे, उन भव्य प्राणियों को और जन्म–मरण से ऊपर उठे मुक्तात्माओं को भी शासित कर रहे हैं। ये तीनों प्रकार के जीव उस परमात्मा के अनुशासन में चल रहे हैं। ये अमर जीव वे हैं जो

'अद्यते अत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते'

उस सबके आधारभूत अन्न नामक प्रभु के द्वारा, अर्थात् उस प्रभु के चिन्तन के द्वारा इस जन्म–मरण के चक्कर को लांघ जाते हैं। ये तीनों ही प्रभु से शासित होते हैं, प्रभु ही इनके ईशान हैं। प्रभु की व्यवस्था के अनुसार ही ये सब उस–उस जन्म का धारण कर रहे हैं। इस वेदमन्त्र में जन्म के दृष्टिकोण से तीन भागों में विभक्त किया गया है– प्रथम तो वे जो **'यथाकर्म यथाश्रुतम्'**– अपने ज्ञान व कर्म के अनुसार किसी शरीर को धारण कर चुके हैं,ये 'भूत' कहलाते हैं, जिनका जन्म हो चुका है। दूसरे वे जीव हैं जो शीघ्र ही समीप भविष्य में जन्म ग्रहण करेंगे। ये 'भाव्य' कहलाते हैं, जिनका जन्म होगा और तीसरे वे हैं जो हृदयग्रन्थियों के भेदन से, संशयों के छेदन से और कर्मों की क्षीणता व दुर्बलता से ऊपर उठकर उस परावर प्रभु को देखकर 'अमृतत्व' का लाभ कर पाते हैं, ये जन्म–मरण के चक्कर से ऊपर उठकर मुक्ति–प्राप्त हैं। परमात्मा की न्याय–व्यवस्था के अनुसार जीव की ये तीन प्रकार की गतियाँ होती हैं। सांख्यकार इनका वर्गीकरण करते हुए लिखते हैं–

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः॥

(५–८४)

अर्थात् तीन का तीन प्रकार से वर्गीकरण है, कर्मदेह,

उपभोगदेह और उभयदेह। इन्हें ही देव, मनुष्य और तिर्यक् कहा जाता है।

इस सम्बन्ध में छान्दो.उप. (५-३-३) में आरुणि पुत्र श्वेतकेतु तथा पांचाल देश के राजा जैबलि का बहुत सुन्दर संवाद है। राजा ने श्वेतकेतु से पूछा कि क्या तुम अपनी शिक्षा पूरी कर चुके हो? श्वेतकेतु के हाँ कहने पर राजा ने उससे पांच प्रश्न पूछे, जिनके उत्तर श्वेतकेतु नहीं दे सका। वे पांच प्रश्न इस प्रकार हैं-

१. क्या तुम्हें मालूम है कि मरकर मनुष्य यहाँ से कहाँ जाता है? २. क्या तुम्हें मालूम है कि लौटकर कैसे आता है? ३. क्या तुम्हें मालूम है कि 'देवयान' और 'पितृयाण' के मार्ग कहाँ अलग-अलग होते हैं? ४. क्या तुम्हें मालूम है कि इतने प्राणियों के मरते रहने पर भी वह लोक भर क्यों नहीं जाता? ५. और क्या तुम्हें मालूम है कि 'जल' पाँचवी आहुति में जाकर किस प्रकार 'पुरुष' बनकर बोलने लगते हैं? श्वेतकेतु तथा आरुणि को राजा जैबलि ने स्वयं इनके उत्तर इस प्रकार से दिए- राजा ने पहले **पाँचवें** प्रश्न का **उत्तर** दिया कि जल किस प्रकार पाँचवीं आहुति में 'पुरुष' बनकर बोलने लगता है?- हे गौतम! यह द्यु-लोक यज्ञ की अग्नि है। उस अग्नि में सूर्य समिधा है, किरणें धुआं हैं, दिन ज्वाला है, चन्द्र अंगार है, नक्षत्र चिंगारियाँ हैं। इस द्यु-रूप यज्ञाग्नि में देवगण श्रद्धा अर्थात् जल की पहली आहुति देते हैं जिससे 'वाष्प' उत्पन्न होते हैं, वाष्प की दूसरी आहुति से 'बादल' होते हैं। बादल की तीसरी आहुति से 'वर्षा' होती है, वर्षा रूपी चौथी आहुति से 'अन्न' (जिससे वीर्य बनता है) पैदा होता है, वीर्यरूपी पाँचवीं आहुति से स्त्री में 'गर्भ-रूप' हो जाता है। इस प्रकार जल पाँचवीं आहुति में पुरुष बनकर बोलने लगता है। **पहले** प्रश्न का उत्तर कि मरकर मनुष्य यहाँ से कहाँ जाता है? जैबलि ने कहा- जो 'निष्काम-कर्मी' अरण्य में श्रद्धा और तप से उपासना में लीन रहते हैं, वे मृत्यु के बाद ज्योतिर्मय रूप की क्रमिक शृंखला से गुजरते हैं। पहले-पहल उनका रूप 'अर्चि' किरण के सदृश प्रकाशमान होता है, (वेदान्त ४-३-१ में भी- **अर्चिरादिना तत्प्रथितेः** अर्थात् ब्रह्मोपासक अर्चि आदि मार्ग से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है) फिर दिन के समान, उससे बढ़कर पूर्णमासी के पखवाड़े के प्रकाश के समान ज्योतिर्मय हो जाते हैं, उससे बढ़कर 'उत्तरायण' के छः मास में। फिर संवत्सर, फिर 'आदित्य' की महान् ज्योति के सदृश वे तेज से भरपूर हो जाते हैं। फिर चन्द्रज्योति, विद्युत्-ज्योति को प्राप्त होते हैं, उत्तरोत्तर प्रकाश से प्रकाशित होते हुए पुरुष का 'मानव' से 'अमानव' रूप प्रकट होता है। फिर वह 'ब्रह्म-मार्ग' का प्रदर्शन करता है, यही 'देवयान-मार्ग' है।

दूसरा प्रश्न कि-लौटकर कैसे आते हैं? इसका **उत्तर** दिया-इसके विपरीत 'सकाम-कर्मी' मृत्यु के बाद मन्द-ज्योति की क्रम-शृंखला में से गुजरते हैं। पहले-पहले उनका रूप धूम सदृश होता है, फिर रात्रि के समान, फिर 'अमावस्या' की रात्रि के समान....छः मास तक की ज्योतिविहीनता में-'दक्षिणायन' में पहुँचते हैं, परन्तु वे सकाम-कर्मी 'संवत्सर' को अर्थात् उससे भी बढ़े हुए साल भर के अन्धकारमय लोक को नहीं जाते बल्कि 'दक्षिणायन से वे 'पितृ-लोक' को पहुँचते हैं, वहाँ से आकाश को, वहाँ से 'चन्द्र-लोक', वहाँ से 'सोम-लोक', सोम-लोक में अपने कर्मों का फल भोगने के बाद वे उसी क्रम से चन्द्र-लोक से आकाश, फिर वायवीदशा, फिर धूमसदृश दशा से अभ्र सदृश दशा और फिर मेघ में आकर बरस पड़ते हैं तथा धान, जौ, औषधि आदि द्वारा वीर्य के माध्यम से पुनः जन्म लेते हैं। ये जो चन्द्र-लोक से लौटते हैं अगर यहां से जाते समय इनका आचरण यहाँ अच्छा रहा तो, शीघ्र ही वे अच्छी योनि में आ पहुँचते हैं- ब्राह्मण,क्षत्रिय व वैश्य योनि में। जिनका आचरण यहां बुरा रहा था, वे कुत्ते, सुअर, चाण्डाल आदि की योनि में पहुँच जाते हैं। गीता (८-२३ से २६) में कुछ इसी प्रकार की बात कही गई है। श्रीकृष्ण जी ने दो ही मार्गों (उत्तरायण और दक्षिणायन) की चर्चा की है तथा कहा है कि एक मार्ग से जाने वाला लौट कर नहीं आता, मगर दूसरे मार्ग से जाने वाला लौटकर आ जाता है। यहां पर उन्होंने शुक्ल-पक्ष व कृष्ण-पक्ष की बात भी कही है। इसका भाव है- शुक्ल कर्म करते हुए या कृष्ण कर्म करते हुए। एक मुक्ति को और दूसरे चन्द्रलोक तक जाकर वहाँ से लौट आते हैं। ....**तीसरा** प्रश्न कि 'क्या तुम्हें मालूम है कि 'देवयान'

और 'पितृयाण' के मार्ग कहाँ अलग-अलग होते हैं? इसका **उत्तर** भी इसी में आ गया कि 'देवयान' के मार्ग से जाने वाले 'अयन' (आधे वर्ष) से 'संवत्सर' (वर्ष) को चले जाते हैं, पितृयाण-मार्ग से जाने वाले अयन से संवत्सर को न जाकर, पितृ-लोक को चले जाते हैं। **चौथा** प्रश्न कि-इतने प्राणी मरने पर भी वह लोक भर क्यों नहीं जाता? **उत्तर** दिया-देवयान और पितृयाण- इन दोनों में से जो किसी एक से भी नहीं जाते, वे छोटे-छोटे जन्तु, कीट-पतंग की तरह बार-बार जन्म लेने वाले बनते हैं- उनका 'जायस्व-म्रियस्व' (जन्म-मरण) यह तीसरा मार्ग है। इस प्रकार जीव की तीन प्रकार की गतियाँ इस उपनिषद् में बताई गई हैं। पहली निष्काम-कर्मियों की जो मोक्ष को प्राप्त होते हैं, दूसरी सकाम-कर्मियों की जो पितृलोक में जाकर अपने-अपने कर्मानुसार पुनः जन्म लेते हैं और तीसरी पाप-कर्मियों की जो आवागमन के चक्कर में ही पड़े रहते हैं.....

राजा ने आगे कहा कि इसलिए अपने आप को पाप से बचाना चाहिए ताकि व्यक्ति 'जायस्व-म्रियस्व' इन कष्ट-पूर्ण योनियों से बच सके। यहां पर जैबलि ने पांच प्रकार के लोगों को पतित कहा है- सोना चुराने वाला, शराब पीने वाला, गुरु की शैया पर बैठने वाला अर्थात् आदर न करने वाला, ब्रह्म-ज्ञानी को मारने वाला और इन पाँचों से सम्बन्ध रखने वाला। इससे बचने का उपाय यह बताया है कि इस ग्रन्थ में यज्ञ-रूप जिन पाँच अग्नियों (द्यु-लोक अग्नि, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष, स्त्री ये यज्ञ की पाँच अग्नियाँ हैं) को ठीक-ठीक जानने वाला इन लोगों के सम्पर्क में आता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता, वह शुद्ध, पवित्र और पुण्य-लोकों को प्राप्त होता है।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अतः व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था निःशुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रातः, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय-व्यवस्था से सुख देवे।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.३९

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

कुरीतियों का कुचक्र तोड़ना ही होगा

पं. उम्मेदसिंह विशारद

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखते हैं कि जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत-मतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्यों को आनन्द न होगा। यदि हम मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या-द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।

यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जायें। इसके होने की युक्ति इसकी पूर्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एकमत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों की आत्माओं में प्रकाशित करें।

ध्यानाकर्षण- इस लेख में मैंने केवल सामाजिक मान्यताओं व दैनिक दिनचर्या में जिन-जिन मान्यताओं से समाज को हानि हो रही है उन-उनका संकेत मात्र उल्लेख किया है, जिनसे अन्धविश्वासों की परम्परा बनी रहती है। उन-उन मान्यताओं पर विचार करके समाज में व्याप्त रूढ़ियों को हटाने में अपना योगदान देने का कष्ट करें। कुप्रथाएं और परम्परायें कोई ईश्वर का आदेश नहीं होतीं, ये सभी सुख-सुविधा तथा सुव्यवस्था के लिये समाज द्वारा बनाई जाती हैं। यदि हम सड़ी-गली, पुरानी रूढ़ियों को हानि उठाकर भी प्राचीनता के लोभ में अपनाते रहेंगे तो हम जमाने से पीछे रह जायेंगे। कुप्रथाओं और कुपरम्पराओं को हर हाल में बदलना ही होगा, समय का यही तकाजा है।

भ्रान्तियां हटाये, कुरीतियां मिटायें- अपने देश की अवनति में वैचारिक भ्रान्तियों की सबसे अधिक भूमिका रही है। महाभारतकाल के बाद अन्धविश्वासों की मान्यताओं के कारण लम्बे समय तक देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा है और आज भी कायम है। जो देश कभी अपने स्वतन्त्र, प्रखर वैदिक मान्यताओं एवं दूरदर्शी चिन्तन के कारण अध्यात्म तत्त्व दर्शन का अन्वेषक माना जाता था, वही धार्मिक, सामाजिक मूढ़ मान्यताओं तथा कुपरम्पराओं का केन्द्र बन गया है। आज रूढ़ि मान्यताओं का रूप बदल रहा है। आर्यसमाज व अन्य समाज सुधारक विचारधाराओं की संस्थाओं व अनेक मत-मतान्तरों के नेतृत्व को आज आगे आकर सत्य वैचारिक वैदिक मान्यताओं का प्रचार करना होगा।

प्रथा-परम्परायें सोच-समझकर अपनाएं- जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति अपने समाज, परिवार और कुल की निर्धारित परम्पराओं का पालन करता है। प्रचलित परम्पराओं में कई तो ऐसी हैं जिनकी किसी काल में कोई उपयोगिता रही हो, पर आज अनावश्यक ही नहीं हो गयी हैं, अपितु कलंक बन गयी है। उनको हटाना आवश्यक हो गया है।

हमारी अविवेकीय विचारशीलता ही कुरीतियाँ फैलाती है- मान्यताओं और प्रथा-परम्पराओं के सम्बन्ध में अधिकांश लोग अन्ध परम्पराओं के शिकार होते हैं और लकीर के फकीर बने रहते हैं। ऐसे पूर्वाग्रह उन्होंने अपने समीपवर्ती लोगों से सीखे होते हैं और अन्ध परम्पराओं को गले लगाकर रखते हैं। इसलिए आवश्यकता है, आर्षज्ञान प्राप्त करके प्रचलित कुरीतियाँ मिटाने की।

अभिशाप जैसे प्रमुख कुप्रचलन- हमारी समाज व्यवस्था में चार मौलिक दोष हैं। १. वंश के आधार पर ऊँच-नीच की मान्यता। २. वेश धारण करने भर से अज्ञानी, वेद-विहीन को संत मान लेना। ३. कन्या और पुत्र में भेदभाव करना। ४. विवाह में कन्या पक्ष का शोषण आदि। इन कुरीतियों के रहते हम सभ्य समाज के सदस्य नहीं कहला सकते हैं।

दिशा-धारा मोड़नी ही पड़ेगी- गम्भीरतापूर्वक देखने और सोचने से ऐसा प्रतीत होता है कि समझदारी के ऊपर नासमझी सवार हो गई है। हम लाभ के स्थान पर हानि ही अर्जित कर रहे हैं।

परम्पराओं में घुसी हुई अवांछनीयता- विज्ञान ने अपनी प्रामाणिकता स्वतन्त्र चिन्तन का सहारा लेकर की है। सत्य और वेद ज्ञान तथा सृष्टिक्रम को मानकर परम्पराओं को माना जाये तो कई अन्धविश्वास व परम्परायें समाप्त हो

सकती हैं।

विचित्र ये सामाजिक प्रचलन- क्या उचित है क्या अनुचित है, इसका निर्धारण वेद-ज्ञान व विज्ञान के आधार पर किया जा सकता है। अस्तु, उचित-अनुचित के बीच अन्तर करते समय देशकाल एवं परिस्थितियों के आधार पर उपर्युक्त निर्धारण करना चाहिए।

प्रथा-परम्परायें सोच-समझकर ही अपनाएँ- प्रचलित परम्पराओं में कई ऐसी हैं जिनकी किसी काल में आवश्यकता रही हो, पर अब अनावश्यक हो गई हैं। ऐसी अनुचित परम्पराओं को छोड़ना ही बुद्धिमत्ता है। छाती से चिपकी निरर्थक परम्परायें व प्रथाएँ देश, काल व परिस्थिति के अनुसार बदल देनी चाहिएँ।

परम्परा नहीं औचित्य देखें- प्रचलनों, प्रथाओं, परम्पराओं में यदि औचित्य का समावेश न हो तो वे अन्धविश्वासों से जकड़ जाते हैं तथा अनगणित प्रकार की समस्याओं को जन्म देकर अनेकों प्रकार से अपने को और समाज को क्षति पहुँचाते रहते हैं तथा विकास-क्रम को अवरुद्ध करते रहते हैं।

विवेकहीन कुप्रचलन- परम्परायें अच्छी व बुरी लोगों के मन में बस जाती हैं तथा विचार-भक्ति में इतनी गुंजाइश ही नहीं रहती कि उनके गुण-दोषों पर विचार कर सकें, कई बार तो अनुपयुक्त समझते हुए भी कुप्रथाओं को लोग कार्यान्वित करते हुए अपना बड़प्पन समझते हैं और गलत परम्पराओं को प्रश्रय देते रहते हैं।

मुहूर्त से बड़ा विवेक- शुभ व अशुभ मुहूर्त के लिये समाज में बड़ा अज्ञान फैला हुआ है और शुभ-अशुभ के चक्कर में समाज कई बार बड़ी हानि कर लेता है। देश-काल, परिस्थिति तथा ऋतु अनुसार, स्वास्थ्यानुसार जो भी समय हो वही हमारे लिये शुभ होता है। शुभ-अशुभ प्रचलनों को नहीं, औचित्य को मान्यता देनी चाहिए।

प्रत्येक पारिवारिक व सामाजिक उत्सवों के नाम पर दिखावा अवांछनीय है- समाज में विवाह-समारोहों में अनावश्यक आडम्बर किया जाता है। व्यर्थ प्रदर्शनों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करना ही अपनी शान समझा जाता है। इसको रोकना होगा और उस व्यर्थ व्यय से जो धन बचेगा, उसको अन्य रचनात्मक कार्यों में लगाना उपयुक्त है। सामाजिक कुरीतियाँ कैसे मिटें तथा उन्हें प्रचलनों की कसौटी पर कसें और आवांछनीय मूढ़ मान्यताओं को उखाड़ फेंकें। बड़े परिवर्तन के लिये बड़े प्रयास करने पड़ेंगे।

यह दुष्प्रवृत्ति-विरोधी आन्दोलन चलाना ही चाहिए- हमें निम्न विषयों पर आन्दोलन करना होगा, जैसे १. मांस व कटे हुए पशुओं के चमड़े का उपयोग, २. नशेबाजी की बढ़ती प्रथा, ३. पशु-बलि, ४. मृत्युभोज, ५. ऊँच-नीच जाति को मानना, ६. नारी-तिरस्कार, ७. बेईमानी, ८. दहेज-प्रथा, ९. उत्सवों में अपव्यय, १०. धार्मिक अन्धविश्वास, ११. असभ्यता, १२. गुरुडम पूजा आदि-आदि। नवनिर्माण की दिशा में उक्त सुधार आन्दोलन महत्वपूर्ण है। आर्यसमाज एवं अन्य सुधारवादी विचारक संगठनों को आगे आना पड़ेगा।

पूर्वाग्रह कुरीतियों पर अड़े रहना बुद्धिमता नहीं है- मानव जगत् में अधिकांश विचारशक्ति व्यर्थ की पूर्वाग्रह मान्यताओं पर चलती हैं, जिसमें आपस में विरोधाभास होता है। यह पूर्वाग्रह विचार कैसे उत्पन्न होते हैं। मेरी समझ से हम हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, सिख, बौद्ध क्यों होते हैं, क्योंकि हमने उन-उन परिवारों में जन्म लिया होता है और उसकी मान्यताओं के संस्कार पैदा होते ही उस बालक पर डाल दिये जाते हैं तथा वह मनुष्य आजीवन उसी विचारों पर चलता है, एक प्रकार वह थोपे हुए मान्यता एवं विचार होते हैं। उसी को मनुष्य अपना स्वाभिमान समझकर आपस में टकराव होता है और सभी अपने-अपने पूर्वाग्रह विचारों को ही सत्य समझते हैं। विचार कीजिये, इतिहास गवाह है, इन पूर्वाग्रहों ने मानव समाज का भयंकर अहित किया हुआ है।

समाधान- ईश्वर द्वारा प्राणिमात्र के लिये अन्य पदार्थों के साथ-साथ वेदों का ज्ञान भी दिया गया है। वेदों का ज्ञान सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सर्वहितकारी, सत्य धर्म, सृष्टि-क्रमानुसार, विज्ञान के अनुसार सबके लिये समान रूप से है। बस यही सुख-शान्ति का मार्ग है। यह एक ऐसी स्टेज है जहाँ पर सभी पूर्वाग्रह, अवैदिक विचार समाप्त होते हैं। यह नितान्त सत्य है कि मानव जगत् में सम्पूर्ण सुख-शान्ति तभी प्राप्त हो सकेगी, जब संसार वैदिक धर्म के मार्ग पर चलेगा। मानव-समाज में व्याप्त व्यर्थ की मान्यताएँ तभी समाप्त होंगी जब मनुष्य मात्र ईश्वरीय वेद-ज्ञान की शिक्षाओं पर चलेगा।

आर्यसमाज, आर्य और वैदिक अध्यात्म

मधु वार्ष्णेय, वैंकूवर, कनाडा।

आर्यसमाज एक वैचारिक क्रान्ति, आन्दोलन तथा सुधारक बुद्धिवादी चिन्तनधारा है। इसका वैचारिक चिन्तन, मान्यताएँ, आदर्श आदि जीवन-जगत् को सीधा, सच्चा एवं सरल मार्ग बताते हैं। इसकी विचारधारा जीवन की जटिलताओं का समाधान देती है। इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं-वैज्ञानिकता, प्रामाणिकता, आधुनिकता, व्यावहारिक उपयोगिता आदि। आर्यसमाज का आविर्भाव देश, धर्म, जाति की रक्षा, वेदप्रचार, मानव-उत्थान, मानव-निर्माण, विचार-परिवर्तन और चरित्र-निर्माण करने के साथ-साथ ढोंग, पाखण्ड, अज्ञान आदि को मिटाने के लिये हुआ था। इसकी शुरू से भूमिका रही है-जागते रहो, जगाते रहो। आर्यसमाज वेदविरुद्ध मान्यताओं, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, मृतक-श्राद्ध, गुरुडम, व्यक्ति-पूजा, अवैज्ञानिक धार्मिक कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास, पुजापे-चढ़ावे आदि में विश्वास नहीं करता है। वह, जो सत्य, वेदानुकूल, विज्ञान-सम्मत प्रामाणिक बातें हैं, उन्हें महत्त्व देता है। तभी इसके लिये कहा गया है-जहाँ-जहाँ आर्यसमाज है, वहाँ-वहाँ जीवन है। पं. मदनमोहन मालवीय जी का यह कथन सत्य है-आर्यसमाज हिन्दुत्व की रक्षा का सबसे बड़ा प्रहरी है। यदि आर्य जागृत, गतिशील और संगठित रहेगा तो संस्कार, संस्कृत, संस्कृति, जीवन-मूल्य आदि सुरक्षित रहेंगे। आर्यसमाज सर्वदा वेदविरुद्ध बातों का खण्डन तथा सत्य सिद्धान्तों का पथप्रदर्शन करता रहा है। इसी कारण इतने अल्पसमय में आर्यसमाज ने प्रत्येक क्षेत्र में जो उन्नति, निर्माण, सुधार, परिवर्तन आदि कार्य किए हैं, वे सदा स्मरणीय, वन्दनीय व पूजनीय रहेंगे। यह सत्य आज भी निर्विवाद है कि आर्यसमाज सर्वोत्तम विचारधारा का धनी है। इसके पास मौलिक वैदिक विचारशक्ति तथा उसे क्रियान्वित करने की क्षमता है। यही विचारशक्ति संसार को नई दृष्टि और सृष्टि दे सकती है। जितना आर्य-विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार होगा, उतना ही मानव-समाज पाप, अधर्म, बुराइयों, दोषों, विवादों आदि से छूटकर जीवन को सफल व सार्थक कर सकेगा।

आर्यसमाज वह शक्तिशाली संगठन है, जो प्रगति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। ऋषि दयानन्द ने प्राचीन वेदमत को फिर से अनुप्राणित करने के लिए आर्यसमाज की नींव रखी। इसके सब सिद्धान्त और नियम वेदों पर आधारित हैं।

आर्यसमाज आर्य और समाज दो शब्दों के मेल से बना है। आर्य का अर्थ है वह पूर्ण पुरुष जिसमें सभी श्रेष्ठ गुण हों और समाज का अर्थ है संगठन अथवा समुदाय। इसलिए आर्यसमाज का अर्थ हुआ श्रेष्ठ गुण-सम्पन्न व्यक्तियों का समुदाय जो अपने और दूसरे मनुष्यों की भलाई के लिए कार्य करे। आर्य एक व्यापक शब्द है। यह किसी विशेष संगठन, कबीला, मत या जाति का नाम नहीं है। इस शब्द का प्रयोग उन सब व्यक्तियों के लिए होता है जो शुभ गुण सम्पन्न हों चाहे वह किसी भी मुल्क में, कहीं भी पैदा हुए हों। आर्यसमाज का यह भी एक कार्य है कि मनुष्य और मनुष्य के मध्य में जो बनावटी सम्बन्ध है और मतभेद पैदा हो गए हैं और जिनकी नींव संकुचित विचारों पर टिकी हुई है, उनको दूर करके मनुष्य और मनुष्य को आपस में मिलाया जाये। द्वेष, ईर्ष्या एवं जातीय झगड़ों को समाप्त करके संसार में एकरूपता और शान्ति स्थापित की जाए।

आर्यसमाज का विश्वास है कि ईश्वर या परमेश्वर एक है। यही सृष्टि का बनाने वाला और पालन-पोषण करने वाला है। हर देश और राष्ट्र के भगवान् अलग-अलग नहीं हैं। भिन्न-भिन्न देशों और भाषाओं में ईश्वर को भिन्न-भिन्न नामों से याद करते आये हैं किन्तु नामों की भिन्नता से ईश्वर के सम्बन्ध में विभिन्नता पैदा नहीं होती। सभी देशों में वही सूर्य, वही चाँद, वही हवा, वही पानी, वही धरती-आकाश और वही मानवीय भावनायें, विचार और कार्य हैं। संसार परमात्मा को मानता है, मगर उसके सत्य स्वरूप को जानता नहीं है। आर्यसमाज का सन्देश है कि पहले परमात्मा के स्वरूप, कार्यों, नियमों आदि को जानो, फिर उसकी पूजा-भक्ति-प्रार्थना-उपासना आदि करो। परमेश्वर कण-कण और क्षण-क्षण में सर्वत्र विद्यमान है। वह व्यक्ति नहीं शक्ति है, वह अजन्मा है। वह

जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त है। उसकी कोई मूर्ति नहीं बन सकती है, उसको किसी ने देखा नहीं है, गुण-कर्म-स्वभाव से उसके अनेक नाम हैं, उसका निज नाम ओ३म् है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप है।

ईश्वर कभी शरीर धारण कर अवतार नहीं लेता है इसीलिये ईश्वर और जीव दोनों एक नहीं हैं। सर्वव्यापक परमेश्वर की कोई आकृति नहीं बन सकती है। ईश्वर के स्थान पर कल्पित देवी-देवताओं एवं महापुरुषों की मूर्तियों की पूजा वेदविरुद्ध तथा अवैज्ञानिक है। मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा करना, उन्हें खिलाना-पिलाना, झूला-झुलाना, सोना-जगाना, धूप-दीप दिखाना, भोग लगाना आदि अन्धश्रद्धा और अज्ञान है। जो ईश्वर सर्वत्र व्यापक और सदा हमारे साथ है, उस असली परमात्मा की पूजा-भक्ति, उपासना, आज्ञा का पालन करना हमसे छूट रहा है।

आज देखने में आ रहा है कि लोग अनेक देवी-देवताओं, गुरुओं, महन्तों की चरण-वन्दना, स्तुति, गुणगान, पूजा-पाठ आदि कर रहे हैं। यह पूजा ना होकर परमात्मा के नाम पर प्रदर्शन व व्यापार हो रहा है। आर्यसमाज का चिन्तन ईश्वर का सीधा, सच्चा स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति का सरल मार्ग बताता है। प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा सभी स्थान पर तथा हर समय उपलब्ध है। वही उपासना करने के योग्य है। महापुरुषों के चरित्र का अनुकरण करो, सम्मान करो। उनके विशेष गुणों को जीवन में धारण करो यही उनकी सच्ची पूजा है। चरण-वन्दना न करके कर्म-वन्दना भी करो। जीवन बदलते हैं, कर्मों के सुधारने से, बुराइयों व दोषों को छोड़ने से, परमेश्वर के बताये वैदिक रास्ते पर चलने से। श्रेष्ठ बुद्धि को जागृत रखने से मनुष्य पाप-अधर्म व बुराइयों से बचा रहता है, यही असली भगवती यानि बुद्धि का जागरण है।

माता-पिता, अतिथि, पशु-पक्षी आदि के प्रति सद्भावना रखते हुए अपने जीवन को निर्मल बनाना ही आर्यों का परम धर्म है। इस प्रकार व्यक्ति उत्तम सुखादि आचरणों वाला होने से आर्य बन जाता है। आर्य कोई विशेष जाति नहीं। आर्यसमाज कुरीतियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करता आ रहा है। यही कारण है कि आर्यसमाज सदा से ही इस प्रकार के महासम्मेलन मनाता आ रहा है, जिससे मानव-समाज में जागृति उत्पन्न हो। सभ्य समाज की स्थापना हो।

आर्यसमाज की मान्यताओं का मुख्य आधार वेद हैं। महर्षि दयानन्द ने पुनः वेदज्ञान को ईश्वरीय ज्ञान के पद पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने घोषणा की-वेद सबके हैं और उन्हें पढ़ने का अधिकार सबको है। यह ऋषि दयानन्द की ही प्रतिभा का चमत्कार है कि उन्होंने वेदों के उपदेश और शिक्षाओं को जीवन व जगत् से जोड़ा। उनका नारा था- "वेदों की ओर लौटो। वेदों को मानो।" वेद-ज्ञान हमें जीना सिखाता है। वेदों में प्रभु की रचना-नियम, व्यवस्था, विधि-निषेध का उपदेश तथा सन्देश है। वेद-प्रचार से ही अज्ञान, अविद्या, पाप, अधर्म, ढोंग, पाखण्ड, गुरुडम आदि दूर होंगे। आध्यात्मिक चेतना जागृत होगी। अध्यात्म मार्ग का अनुसरण करने से मन एवं आत्मा में शान्ति और स्थिरता आती है। संसार का उपकार करना अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। वेद-ज्ञान के नाम पर सभी एकमत हैं।

दार्शनिक क्षेत्र में ऋषि ने त्रैतवाद की स्थापना की, यह उनका इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। ऋषि के मत में ईश्वर, जीव और प्रकृति का न कोई आदि है और न कोई अन्त, इसलिये ये तीनों अनन्त हैं।

इस सृष्टि का बनाने वाला परमात्मा है, उसके बिना यह संसार न तो बन सकता है और न चल सकता है। जगत् में नाना प्रकार की योनियाँ अपने कर्मानुसार भोगों को भोग रही हैं। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पा रहा है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में परतन्त्र है। जीव का शरीर के साथ आना जन्म और शरीर को छोड़ देना मृत्यु कहलाती है। आने-जाने के क्रम को आवगमन कहते हैं। जीव कर्मानुसार शरीर बदलता रहता है। जीव को मनुष्य-जन्म अनगिनत पुण्यकर्मों और बड़े सौभाग्य से मिलता है। सभी योनियों में सबसे श्रेष्ठ, उच्च, बुद्धिमान् मानव ही माना गया है। इस आवागमन के सिद्धान्त से जीव को निरन्तर उन्नति, पुरुषार्थ और सुधरने-संभलने का अवसर मिलता रहता है। यदि मानव-जन्म पाकर भी सत्संग, प्रभुभक्ति आदि उत्तम कार्य न किये तो इससे बढ़कर और कोई हानि न होगी। श्रेष्ठ कर्मों से मनुष्य

देवत्व को प्राप्त करता है।

आज धर्म के नाम पर नाना पन्थ, सम्प्रदाय, मजहब, मत आदि चल रहे हैं और दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, जिससे सच्चा धर्म छूट रहा है। धर्म परमात्मा द्वारा प्रवर्तित होता है जबकि सम्प्रदाय मनुष्यों द्वारा बनाये जाते हैं। धर्म सदा रहता है। सम्प्रदाय घटते-बढ़ते रहते हैं। धर्म जोड़ता है, सम्प्रदाय परस्पर झगड़े, विवाद कराते और तोड़ते हैं। ज्ञान और विवेक बहुत पीछे छूट गया है। धर्म का सम्बन्ध कर्म के साथ है।

आर्यसमाज का सन्देश और वेदों का नारा है-''धर्म को पहचानो, पकड़ो तथा उसका आचरण करो।'' आचरण से ही जीवन सुधरेंगे एवं पवित्र होंगे। वैदिक धर्म मानव धर्म है। जिसमें मानव मात्र को बिना भेदभाव के एक समान दृष्टि से देखा गया है। सबके कल्याण, उत्थान और सुमंगल की कामना है।

जीवन को सन्तुलित, व्यवस्थित, नियमित तथा आत्मोन्नति की ओर चलाने के लिये ऋषियों ने आश्रम-व्यवस्था बनाई। व्यक्तिगत उन्नति के लिये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम उपयोगी हैं।

आर्यसमाज का सन्देश है-वर्ण-व्यवस्था जन्म से नहीं कर्म से होती है। जाति, जन्म से होती है, जबकि वर्ण कर्मों से बनता है। आर्यसमाज में सबको उन्नति करने का समान अधिकार है।

आर्यसमाज संस्कारों के सत्यस्वरूप का रक्षक, प्रचारक एवं प्रसारक है। संस्कारों से ही संस्कृति सुरक्षित रहती है।

परमात्मा का एक नाम यज्ञ है-उसका अखण्ड यज्ञ निरन्तर सृष्टि में चल रहा है। ये सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, वनस्पति-पशु-पक्षी सभी यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञ प्रभु मिलन का मार्ग प्रशस्त करता है। यज्ञ का सम्बन्ध जन्म से लेकर मृत्यु तक है। यह वैदिक धर्म की पहचान है।

आर्यसमाज के सिद्धान्त के अनुसार स्वर्ग और नरक किसी स्थान पर नहीं है, जहाँ सुख और शान्ति, सन्तोष, प्रेम, एकता, सब मिलकर रहते हैं, वही स्वर्ग है। जहाँ दुःख, कलह, फूट, रोग, चिन्ता आदि हैं, वही नरक है। स्वर्ग और नरक इसी शरीर में और इस संसार में भोगे जाते हैं। कर्मों को संभालो, सुधारो और ऊँचा उठाओ स्वर्ग हमारे पास यहीं संसार में है।

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज ने नारी जाति के सम्मान, महत्त्व व योगदान की बढ़-चढ़कर वकालत की है। गृहस्थ का सबसे बड़ा धर्म सन्तान को सुसंस्कारित तथा सुविचारित बनाना है। नारी का धार्मिक, शिक्षित व सुसंस्कारित होना अत्यन्त आवश्यक है तभी मानव-निर्माण संभव है।

आर्यसमाज में जीवित श्राद्ध का विधान है, मृतक का नहीं।

वैदिक धर्म अभक्ष्य खाद्य पदार्थों का सप्रमाण विरोध तथा निषेध करता है। भोजन का सूक्ष्म भाग मन बनता है, जैसा अन्न वैसा मन। मन के बिगड़ते ही विचार, भाव, सोच बदलते हैं। जैसे विचार बनेंगे और उसी के अनुरूप आचरण होगा।

आर्यसमाज के सिद्धान्त, आदर्श व मान्यताएँ जीव हिंसा तथा अभक्ष्य पदार्थों का विरोध करते हैं। आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था है, जो मिथ्या, मनगढ़न्त, अवैज्ञानिक, अन्धविश्वास पूर्ण बातों के खण्डन करने के लिये सार्वजनिक रूप से तर्क-प्रमाण से युक्त शास्त्रार्थ करने के लिये सदा उद्यत रहती है। इसी कारण सभी विचारधारा वाले लोग आर्यसमाज से अन्दर ही अन्दर डरते हैं, क्योंकि आर्यसमाज के पास सत्य पर आधारित चिन्तन की सम्पदा है। इसके सामने बेसिर पैर की बातें नहीं चल सकती हैं। आर्यसमाज गलत बातों का खण्डन तथा सत्य व प्रमाणिक बातों का प्रचारक व प्रसारक है। इसकी चिन्तनधारा सत्य, विज्ञान, वेद, तर्क, प्रमाण, युक्ति, व्यावहारिक आधार आदि पर चिन्तन, मनन करने की शक्ति देती है।

आर्यसमाज मानवता का प्रचार करने वाला, सत्य का प्रचारक और ईश्वरीय ज्ञान की मान्यताओं पर आधारित संगठन है। इस कारण वह जाति, वर्ग एवं भौगोलिक सीमाओं में बंधा हुआ नहीं है।

आर्यसमाज की समस्त मान्यताओं का आधार वेद हैं। आर्यसमाज चाहता है कि संसार में वेद-ज्ञान फैले और सुख-शान्ति, भाईचारे का वातावरण पुनः स्थापित हो जाये। जन-जन की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना आर्यसमाज का उद्देश्य है। आर्यसमाज 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना करता है, सारे विश्व को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करता है और मानव मात्र को एक परिवार बनाना चाहता है।

शङ्का समाधान – २१

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का-१. महर्षि का जन्म कहीं १४ फरवरी १८२५ लिखा है और कहीं १८२३ लिखा है। सही तिथि क्या है?

२. 'जन ज्ञान' मासिक पत्रिका जो दयानन्द संस्थान दिल्ली से पं. भारतेन्द्रनाथ जी द्वारा निकलती थी, उसके वर्ष १९७१ के अगस्त अंक के पृष्ठ १६ पर श्री दयानन्द जी की माँ का नाम 'यशोदा माई' लिखा है। जबकि 'आर्य नीति' जिसको सत्यव्रत सामवेदी निकालते हैं, उसमें एक लेख छपा है 'दयानन्द को जानें व मानें' जो श्रीमती वेद साहनी, जयपुर द्वारा लिखा गया है उसके पृष्ठ संख्या ५ पर ऋषि की माता का नाम अमृता बेन लिखा है कृपया सही नाम स्पष्ट करें?

३. आजकल पत्र-पत्रिकाओं में परोपकारी अजमेर व दयानन्द स्मृति प्रकाश जोधपुर में सृष्टिसंवत् १९६०८५३११८ लिखा रहता है जबकि स्वामी दर्शनानन्द सांख्य दर्शन जिसका पुनः प्रकाशन सार्वदेशिक सभा दिल्ली द्वारा जनवरी सन् २००३ में मुद्रित हुआ था उसमें सृष्टिसंवत् १९७२९४९१०३ छपा है। इसमें अन्तर क्यों है?

मंगलदेव आर्य, सबलाना, भरतपुर।

समाधान- १. महर्षि दयानन्द सरस्वती का स्वजन्म विषयक संक्षिप्त संकेत निम्नवत् है-''संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म...हुआ था।'' महर्षि ने तिथि मास का उल्लेख नहीं किया है। इसी कारण भाद्रशुक्ल नवमी, २ सितम्बर १८२४, फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा, १९ फरवरी १८२५, आश्विन बदी सप्तमी, १५ सितम्बर १८२४ तथा फाल्गुन बदी दशमी, १२ फरवरी १८२५, का उल्लेख जन्मतिथि के रूप में मिलता है। महर्षि जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं शिवरात्री, चौदहवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता सम्पूर्ण... तथा गृहत्याग आदि के आधार पर सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ने २३ जुलाई १९६० को **''संवत् १८८१, फाल्गुन बदी दशमी (१२ फरवरी १८२५) दिन शनिवार'' महर्षि की जन्मतिथि स्वीकार की।** सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा ने २ अप्रैल १९६७ को उक्त निर्णय की पुष्टि की।

अतः महर्षि की जन्मतिथि फाल्गुन बदी दशमी, संवत् १८८१ दिन शनिवार है।

जन्मतिथि विषयक विस्तृत विवेचन जिसमें उक्त तिथि का समर्थन तथा अन्य पक्षों का युक्ति पुरस्सर निरसन डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री लिखित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रामाणिक जन्मतिथि' द्रष्टव्य है। डॉ. भवानीलाल भारतीय ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'नवजागरण के पुरोधा: दयानन्द सरस्वती' में भाद्रपद शुक्ला नवमी को महर्षि की जन्मतिथि स्वीकार किया था, किन्तु डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री की इस परिश्रमपूर्ण कृति के प्रकाशन पर डॉ. भारतीय ने भाद्रपद शुक्ला नवमी को छोड़कर फाल्गुन बदी दशमी को उचित स्वीकार किया है-द्रष्टव्य-डॉ. शास्त्री कृत ग्रन्थ का परिशिष्ट-५, पृ.१०५

२. महर्षि की माता का नाम-इस विषय में तीन पक्ष हैं-

क. स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने महर्षि की माता का नाम यशोदा लिखा है। द्रष्टव्य-ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी ले. दयालमुनि आर्य, पृ. ७३

ख. कविरत्न आचार्य मेधाव्रत ने दयानन्द-दिग्विजयम् ३.४१ में महर्षि की माता का नाम रुक्मिणी लिखा है। तद्यथा-

पुत्रगर्भवती माता रुक्मिणी कृष्णभामिनी।
धान्यश्रीरिव गौराभात् प्रच्छन्नफलवर्धना।।

ग. श्रीकृष्ण शर्मा ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का वंश परिचय' पृष्ठ १८ पर महर्षि की माता का नाम अमृता बाई लिखा है। श्रीकृष्ण शर्मा ने महर्षि के बालसखा इब्राहीम से प्राप्त जानकारी तथा महर्षि की बहन प्रेमबाई के प्रपौत्र पोपटलाल से हुई पुष्टि को आधार कहा है, किन्तु श्रीकृष्ण शर्मा ने इन दोनों के जीवनकाल में इस जानकारी को प्रकाशित नहीं किया।

टंकारा निवासी एवं ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी के लेखक श्रीदयाल मुनि आर्य का अभिमत है- ''जिस प्रकार स्वामी जी की माता का नाम यशोदा और

रुक्मिणी कल्पित किया गया है, उसी प्रकार यह अमृताबाई नाम भी काल्पनिक है''-पृ. ७८

महर्षि जीवन चरित की सामग्री संकलत करने में अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण भाग को निष्काम भाव से समर्पित करने वाले देवेन्द्र बाबू का अभिमत है-''मूल जी (ऋषि दयानन्द) की जननी के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते।'' द्रष्टव्य-'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित'-पृ. ४७

अत: महर्षि की माता के नाम विषयक प्रामाणिक विवरण का अभाव है।

३. सृष्टि संवत्- सृष्टि काल गणना का सामान्य प्रकार है- चतुर्युग, मन्वन्तर काल की गणना। एक हजार चतुर्युगी का काल ब्राह्मदिन कहलाता है और उतनी ही चतुर्युगी की रात्री संज्ञा है। किन्तु समग्र सृष्टिकाल चौदह (१४) मन्वन्तर में विभक्त है और एक मन्वन्तर में इकहत्तर (७१) चतुर्युगी हैं। इस प्रकार सृष्टिकाल ७१×१४=९९४ नौ सौ चौरानवें चतुर्युगी रहता है। शेष छ: (१०००-९९४=६) चतुर्युगी का काल दो करोड़ उनसठ लाख बीस हजार वर्ष सन्धिकाल कहलाता है। सृष्टि-उत्पत्ति से वर्तमान तक व्यतीत काल सृष्टि संवत् है।

परोपकारिणी सभा की काल गणना (जिसे आपने शङ्का में उद्धृत किया है-एक अरब छियानवें करोड़ आठ लाख तरेपन हजार एक सौ अठारह) का आधार ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का वेदोत्पत्तिविषय नामक प्रकरण है। वहाँ महर्षि ने अब तक व्यतीत छ: मन्वन्तर तथा सातवें मन्वंन्तर की व्यतीत सत्ताईस चतुर्युगी तथा अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि के वर्तमान (संवत् २०७५) तक व्यतीत पांच हजार एक सौ अठारह (सत्रहवां व्यतीत-अठारहवां चल रहा है) को एक साथ जोड़ने पर अर्थात् **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की रचना से अब तक व्यतीत काल को जोड़ देने पर परोपकारी में प्रकाशित संख्या पूर्णत: उचित है।**

सार्वदेशिक सभा द्वारा मुद्रित संख्या में सन्धिकाल दो करोड़ उनसठ लाख बीस हजार का ७/१५ भाग एक करोड़ बीस लाख छियानवें हजार वर्ष जोड़े हुए हैं। साथ ही २००३ से २०१८ तक के पन्द्रह वर्ष भी जोड़ने पर संख्या सार्वदेशिक की अभिमत संख्या १९७२९४९११८ है। इस सार्वदेशिक अभिमत संख्या १९७२९४९११८ में से १२०९६००० सन्धिकाल घटाने पर संख्या १९६०८५३११८ एक अरब छियानवें करोड़ आठ लाख तरेपन हजार एक सौ अठारह रहती है।

परोपकारिणी सभा ने सन्धिकाल नहीं जोड़ा है, क्योंकि महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में सन्धिकाल नहीं जोड़ा है। सार्वदेशिक सभा ने सन्धिकाल जोड़ा हुआ है। सन्धिकाल हटने पर सार्वदेशिक की संख्या और परोपकारिणी की संख्या समान हो जाती है। अन्तर का कारण सार्वदेशिक सभा द्वारा महर्षि निर्दिष्ट संख्या में सन्धिकाल जोड़ना है।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

वैदिक धर्म के सशक्त हस्ताक्षर - डॉ. धर्मवीर जी

प्रकाश आर्य

जिनकी स्मृतियाँ, जिनके संस्मरण आज भी निरन्तर महर्षि दयानन्द के पथ पर चलने की प्रेरणा देती हैं, उन निस्पृह विद्वज्जनों की शृंखला में आचार्य डॉ. धर्मवीर का जीवन सदैव पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। उनकी स्मृतियों को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री प्रकाश आर्य ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है। यद्यपि यह लेख 'वेदपथ के पथिक' आचार्य धर्मवीर स्मृति ग्रन्थ हेतु लिखा गया था, परन्तु किसी कारणवश उस समय न छप सका, अतः अब दिया जा रहा है। - **सम्पादक**

यद्यपि आज डॉ. धर्मवीर जी हमारे मध्य भौतिक रूप से नहीं हैं किन्तु फिर भी वे हमारे मध्य ही हैं। ऐसी अनुभूति उन अनेक स्नेही, निकट संबन्धी और श्रद्धालुओं के मन में है जो उनके निकट रहे, या उन्हें नजदीक से जानते थे। उनके कार्य, उनकी विद्वत्ता, अपने ढंग की वक्तव्य शैली सब कुछ हमारे दिलो दिमाग में आज भी वैसी ही है। मान-सम्मान तो स्व प्रयत्नों से या खरीदकर भी प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु यश कीर्ति लोगों के हृदय से प्रस्फुटित होती है, स्वतः होती है, चिरस्थायी होती है। कहा गया, ''**यस्य कीर्तिः स जीवति**'' जिसकी कीर्ति है भौतिक मृत्यु उसको हमसे अलग नहीं कर सकती।

''यथा नाम तथा गुण'' को चरितार्थ करने वाले सशक्त हस्ताक्षर डॉ. धर्मवीर आर्यजगत् के लिये कोई नया नाम नहीं। देश-विदेश में वैदिक धर्म का सन्देश आजीवन देने वाले, हँसमुख, अपनी तार्किक शैली में मीठा कटाक्ष, कभी कड़वा भी देते हुए श्रोता को यथार्थ का बोध करवा देते थे। कुछ व्यक्ति कहते भी थे कि डॉक्टर साहब कुछ कड़वा बोल देते हैं। उनकी वाणी अवैदिक सिद्धान्तों, असत्य मान्यताओं का खण्डन करने में कभी-कभी कुछ गंभीर व कटु अवश्य प्रतीत होती थी, किन्तु उनकी भावना एक चिकित्सक की भांति किसी के कष्ट कम करने के लिए दी गई कड़वी औषधि, इंजेक्शन अथवा शल्य चिकित्सा के समान थी। जैसे प्रारम्भ में कभी अबोध बालक कड़वी दवा या इंजेक्शन के महत्त्व को न समझते हुए डॉक्टर से नाराज भी हो जाता है। वह इसलिए क्योंकि प्रारम्भिक कष्ट के बाद अच्छे परिणाम के संबन्ध में उसे समझ नहीं होती। महर्षि का तो अज्ञानता के कारण विरोध भी हुआ। जो दया से भरपूर था, सबका सच्चा हितैषी था उसे भी दुश्मन मान लिया। यही डॉ. धर्मवीर जी के संबन्ध में कहीं-कहीं और कभी सुनने में अवश्य आया किन्तु उनके सत्य को आज तक किसी ने नकारा नहीं। ऐसा प्रायः होता है ''**यत्तदग्रे विषमिव परिणामे अमृतोपमम्**'' प्रारम्भ में कुछ बातें विष के समान लगें किन्तु परिणाम में अमृत होती हैं। आर्यजगत् में विद्वान् तो बहुत हुए और डॉ. धर्मवीर जी भी बढ़ चढ़कर होगें। किन्तु मेरी सामान्य बुद्धि और दृष्टि डॉक्टर धर्मवीर में एक साथ कई विशेषतायें पाती हैं।

पुस्तकीय, गुरुकुलीय शिक्षा या वक्तव्य कला तो अनेकों के पास होती है, परन्तु स्पष्टता, निस्वार्थ भाव और निर्भीकता सबमें नहीं होती। अनेक बड़े-बड़े विद्वान् समझौतावादी, मूकदर्शक, अधिकारियों और धनपतियों की जीहुजूरी करते देखे जा सकते हैं। ऐसे महानुभाव मंच पर तो सफल होते हैं किन्तु सामाजिक व संगठन की दृष्टि से उनका लाभ नगण्य होता है। किन्तु डॉ. धर्मवीर जी मंच या कलम में वाहवाही के लिए नहीं अपितु समाज व राष्ट्र के मानवीय कर्त्तव्यों का बोध अपनी वाणी व लेखनी से करते थे। अनैतिक, असैद्धान्तिक विषयों और अन्धविश्वास पर सदा कड़ा प्रहार करते थे। आवश्यकतानुसार, ऋषि के अनुसार कहीं नेहरनी कहीं कुल्हाड़े का उपयोग करते रहे।

परोपकारी पत्रिका का सम्पादकीय लेख धर्म, कर्म, समाज, राष्ट्र की दशा और दिशा का सही बोध कराता था जो भटके हुए, सोते हुए समाज को चेतना प्रदान करता था। अब वैसा ज्ञानवर्धक लेख कौन लिखेगा? कौन वैदिक धर्म के विरुद्ध उठने वाली किसी बात का तत्काल खण्डन करेगा? यह अपूरणीय क्षति है।

ऋषि उद्यान आज आर्यजगत् में कुछ गिने-चुने स्थलों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। वर्षों से एक सच्चे ऋषि भक्त के कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए अपने अथक परिश्रम से इसकी प्रगति, व्यवस्था व अत्यन्त आकर्षक संरचना में डॉ. धर्मवीर का महत्त्वपूर्ण योगदान और पुरुषार्थ है।

''सादा जीवन उच्च विचार'' के सूत्र को आत्मसात करते हुए अपने लिए थोड़ा और संगठन के लिए बहुत कुछ करने वाले ऋषि भक्त डॉ. धर्मवीर जी का नाम ऋषि उद्यान से तब तक जुड़ा रहेगा जब तक ऋषि उद्यान का अस्तित्व रहेगा। आज यह आर्यों का श्रद्धास्थल है, वैदिक प्रशिक्षण केन्द्र प्रचार-प्रसार में अग्रणी तथा तीर्थ बना हुआ है। देश-विदेश से आने वाले व्यक्तियों के लिए एक सुन्दर, आकर्षक, दर्शनीय व प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है, जो मात्र भवनों की भव्यता का प्रदर्शन नहीं है, अपितु रचनात्मक प्रकल्प के रूप में स्थापित हो गया है।

लिखने के और कहने के लिए बहुत कुछ है। किन्तु जिनकी अपनी जीवन शैली ही बिना बोले, बिना लिखे सर्वसाधारण के मध्य विद्यमान है, स्वयं परिचय है उनके बारे में कुछ प्रस्तुति या लिखने में मेरे शब्द व कलम सक्षम नहीं है।

मेरा अनेकों बार उनके साथ कई-कई दिनों तक साथ रहने का सौभाग्य रहा, वे बड़ा अपनत्व मुझसे रखते थे। खुलकर हमारी चर्चा होती थी। मेरे साथ रहने से तो उन्हें एक साथी होने का ही लाभ होता था, किन्तु मैं इस समय का उनसे पूरा-पूरा लाभ ले लेता था। कई बार कई विषयों को चर्चा के दौरान छेड़ देता, फिर उस पर जो चर्चा होती वह मेरी ज्ञानरूपी कमाई होती थी। उनकी वाणी और व्यवहार मेरे लिए प्रेरणा व विनोदपूर्ण लहजे का मिला-जुला रूप होता था।

निश्चित ही उनकी समाज के मध्य भौतिक क्षति कोई साधारण क्षति नहीं है। जिसने यह दु:खद समाचार सुना वही इस आघात से बुरी तरह प्रभावित हो गया। आर्यों के दिल में जो वेदना की अनुभूति हुई वह अकथनीय है। किन्तु यह हमारे हाथ में नहीं है, इस व्यवस्था को मानने हेतु हम परतन्त्र हैं।

उनके प्रति क्या कहूँ? कितना कहूँ? आत्मपीड़ा है। हमारे अपने, कथनी-करनी के साधक, समाजहितैषी का हमारे बीच से यूँ यकायक चले जाना जीवन का महान् दु:खद काल है।

उन्होंने जो किया, अच्छा किया, परमार्थ हेतु किया, अब हम उनके निकट संबन्धी उनके कार्यों को और आगे बढ़ावें, यही हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा है।

डॉक्टर साहब के भौतिक स्वरूप को हमने खो दिया, उनकी पूर्ति संभव नहीं है यह सम्पूर्ण आर्यजगत् की महान् क्षति है। किन्तु उनका कार्य पूरी निष्ठा व पुरुषार्थ से उनकी धर्मपत्नी बहन ज्योत्स्नाजी पूरा करने में लगीं हैं। अन्य सहयोगी विशेषकर श्री ओममुनि जी के हाथों ऋषि उद्यान का कुशल संचालन हो रहा है, आगे भी होगा ऐसा पूर्ण विश्वास है। अन्त में कर्मवीर, धर्मवीर, डॉक्टर साहब को मेरी विनम्र श्रद्धांजलि।

यूँ तो कई जन्म लेते और मरते देखे जाते हैं,
कुछ तो जीने का अर्थ ही नहीं समझ पाते हैं।
जिन्दगी तो वही जिन्दगी है,
जो न रहने पर भी सदा याद आते हैं।।

जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल, अग्नि के बीच में उनका होम कर, शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५८**

जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ५.४१

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ- प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***- आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***- अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***- गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***- वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***- इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***- योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से २८ फरवरी २०१८ तक)

१. सुश्री राजाबाला, ऋषि उद्यान, अजमेर २. डॉ. नन्दकिशोर काबरा, ऋषि उद्यान, अजमेर ३. श्री सुशील आनन्द मान्धाना चेरिटेबिल ट्रस्ट, प. मुंबई ४. आयुष्मति समृद्धि, जयपुर ५. श्रीमती कमला व बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर ६. श्रीमती दीपा कोरानी, अजमेर ७. श्री अंकुर भार्गव, बैंगलोर ८. श्रीमती सुवर्चा व श्री अंकुर भार्गव, बैंगलोर ९. श्रीमती पुष्पलता उपाध्याय, अजमेर १०.आर्याव्रत केसरी (आर्यसमाज), मुरादाबाद ११. श्री ऋषि कुमार, बुलन्दशहर १२. श्री रामकिशोर, बुलन्दशहर १३. श्री सुखराम सैनी, बुलन्दशहर १४. श्री रामचन्द्र आर्य, ज्वालापुर १५. डॉ. अशोक कुमार आर्य, अमरोहा १६. श्रीमती ललिता शास्त्री, हिसार १७. श्री सुरेन्द्र सिंह, नई दिल्ली १८. श्री विजयसिंह गहलोत व श्रीमती कंचन गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर १९. श्रीमती सीता देवी, अजमेर २०. श्री कौशल गुप्ता, गाजियाबाद २१. श्री दयाल दास आहूजा, रायपुर २२. श्री प्रशान्त कुमार, नई दिल्ली २३. श्री रंजन हाण्डा, दिल्ली २४. श्री अवनीश कपूर, नई दिल्ली २५. श्री रमाकान्त बाल्दी, अजमेर।

परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१६ से २८ फरवरी २०१८ तक)

१. श्री लक्ष्मण मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर २. श्रीमती कमला व ब्रदीप्रसाद पंचोली, अजमेर ३. श्रीमती मेघा बाल्दी, अजमेर ४. श्री कौशल गुप्ता, गाजियाबाद ५. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वोत्तम होगी

डॉ. प्रभु चौधरी

भारत को आजाद हुए सत्तर वर्ष बीत गए, पर हिन्दी आज भी राष्ट्र-भाषा नहीं बन सकी। प्रश्न यह है कि क्या हिन्दी भाषा में वे गुण या स्तरीयता नहीं है कि वह राष्ट्रभाषा बन सके? वे कौन से गुण हैं, जो राष्ट्रभाषा बनने के लिये आवश्यक होते हैं।

निश्चित रूप से, हिन्दी भाषा विशद और प्रभावी भाषा है फिर भी राष्ट्र भाषा क्यों नहीं बन पाई? इस पर विचार किया जाना चाहिए। राष्ट्रभाषा के प्रमुख पाँच गुण माने जाते हैं-

१. जिस भाषा का उपयोग राष्ट्र के अधिकांश लोग करते हैं।

२. जो भाषा और प्रान्तों से समन्वय स्थापित कर सके।

३. जिसका व्याकरण जटिल न हो।

४. जिसमें अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करने की सामर्थ्य हो।

५. जिसमें उच्चस्तरीय एवं वैज्ञानिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हों।

१. मद्रास में सर्वप्रथम हिन्दी का विरोध प्रारम्भ हुआ था, जब हिन्दी के साइनबोर्डों और होर्डिंग्स को उखाड़कर फेंक दिया गया था। उन पर कालिख पोत दी गई। प्रश्न यह था कि हिन्दी का विरोध किस आधार पर किया गया था? इसके कारण स्पष्ट नहीं हो सके। अत: यही अनुमान लगाया गया था कि यह कृत्य द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (डी.एम.के.) द्वारा अपने राजनीतिक हितों के लिए ही विरोधस्वरूप किया गया था।

यह जानते हुए भी कि भारतीय भाषा ही भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है। इसके बावजूद डी.एम.के. ने अंग्रेजी को राष्ट्र-भाषा बनाए जाने की हास्यास्पद माँग उठाई, जो संविधानानुसार सम्भव ही नहीं हो सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने में अनावश्यक बाधायें खड़ी की गईं। विचारणीय प्रश्न यह है कि संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ खाने वाले डी.एम.के. नेता संवैधानिक व्यवस्था को भूल कर अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने की हास्यास्पद माँग कैसे कर बैठे? क्या साइनबोर्डों और होर्डिंग्स पर कालिख पोत देने से या उन्हें तोड़ देने से हिन्दी को लोगों के दिल से निकाला जा सकता है?

२. सी. राजगोपालाचारी अपने काल में सदा ही हिन्दी भाषा का विरोध करते रहे, यह बात भी कम हास्यास्पद नहीं रही। यह जानते हुए भी कि कोई विदेशी भाषा भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती है, फिर भी सी. राजगोपालाचारी अंग्रेजी का पक्ष लेते रहे। इससे भी अधिक हास्यास्पद बात यह रही कि यह जानते हुए भी कि भारत की सत्तर प्रतिशत आबादी अंग्रेजी को व्यवहार में नहीं लाती है, फिर भी अंग्रेजी का पक्ष लिया गया। ऐसे अंग्रेजीपरस्त लोगों ने सर्वलोकप्रिय भाषा का घोर अपमान किया।

३. बोडोलैण्ड और गोरखालैण्ड के समर्थक अपनी-अपनी भाषा का राग अलापते रहे हैं।

४. बंगाल में भी बंगला को वर्चस्ववादी भाषा बनाने की एक बार मांग की गई थी।

५. कश्मीर के उपद्रवी कश्मीरी भाषा को प्रमुखता देने का राग अलापते रहे हैं।

६. अभी हाल में कर्नाटक राज्य ने अपनी भाषा को महत्ता देने की मांग उठाई है। कर्नाटक द्वारा न केवल प्रान्तीय भाषा को महत्ता देने की मांग की गई, बल्कि कर्नाटक के अलग झण्डे की मांग भी कर दी गई।

७. यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि सिनेमा के और टी.वी. के नायक-नायिकायें, कुछ मन्त्री एवं प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा धड़ल्ले से अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। इसका अर्थ है कि प्रशासनिक वर्ग के लोग अंग्रेजों की तरह ही अंग्रेजी को अपने वर्चस्व की भाषा बनाए रखना चाहते हैं।

८. जिन नेताओं को अंग्रेजी में भाषण देने का अभ्यास नहीं है, वे भी भाषण के आरम्भ में अंग्रेजी में बोलकर बाद में हिन्दी में भाषण करते हैं।

९. कुछ राज्य दर्जा-एक से अंग्रेजी पढ़ाने के लिये

उत्साहित हैं, भले ही संस्कृत न पढ़ाई जाए।

१०. इतना ही नहीं तीन-चार दर्जे के बाद कम्प्यूटर की शिक्षा दिए जाने का प्रावधान किए जाने की चर्चा है।

११. इण्डिया, ऑनलाइन, कम्प्यूटर और इण्टरनेट (यानि कि मोबाइल) पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है, जिनकी पठन-सामग्री अंग्रेजी में ही है। ऐसे में हिन्दी की बात हो भी कैसे सकती है?

१२. एफ.डी.आई. के नाम पर विदेशी कम्पनियों के लिए मुक्त-हस्त द्वार खोल दिए गए हैं। विदेशी हो या स्वदेशी कंपनियां सभी अपना रुपया कमाने के लिये अंग्रेजी का प्रयोग करती हैं। वे एस.बी.ए., स्वागती और अंग्रेजी औपचारिकताओं का धड़ल्ले से उपयोग करती हैं।

हिन्दी उपयोगकर्ताओं की उपेक्षा-

हिन्दी उपयोगकर्ताओं की उपेक्षा निम्नानुसार हो रही है-

१. हिन्दी में लिखे प्रार्थना-पत्रों को कूड़ा-करकट समझा जाता है।

२. चश्मा लगाकर भी हस्तलिखित पत्रों की उपेक्षा की जाती है। प्रशासनिक अधिकारी इन्हें पढ़ने को सहमत नहीं हैं।

३. अधिकांश प्रशासनिक अधिकारी कम्प्यूटर-पत्र ही पढ़ पाने में समर्थ हैं। सम्भवत: उन्हें हस्तलिखित पत्रों से एलर्जी है।

४. आज तो कम्प्यूटर टंकण के साथ ईमेल और फैक्स से ही प्रार्थना-पत्र, प्रवेश परीक्षायें, ऑनलाइन सिस्टम द्वारा चाहते हैं।

५. जो वृद्धजन कमजोर नयन-ज्योति के कारण कम्प्यूटर का उपयोग कर पाने में असमर्थ हैं, उन पर भी यह दबाव डाला जा रहा है कि वे डिजिटल इण्डिया के सागर में गोते लगायें। इस प्रकार उन्हें भी कम्प्यूटर का दास बनाया जा रहा है।

६. हस्तलिखित कार्यप्रणाली बाधित होती रहे, शायद इसीलिये अब तो डाकखानों में पोस्टकार्ड और अन्तर्देशीय-पत्र मुश्किल से मिल पाते हैं।

७. डिजिटल इण्डिया के अन्तर्गत चल रहे कामों में कभी पावर-सप्लाई न होने का शक हो जाता है, तो कभी सर्वर डाउन होने का। बिजली, पानी, फोन आदि की प्राप्ति रसीदें हाथ से भी तो काटी जा सकती हैं, पर इन व्यवधानों का वर्णन कर, कर्मचारी हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं और मोटी तनख्वाह डकारते हैं।

८. टेलीग्राफ सिस्टम बन्द किया जा चुका है। संभवत: अण्डर सर्टिफिकेट ऑफ पोस्टिंग की व्यवस्था भी समाप्त कर दी गई है। कल बुक पोस्ट-पार्सल की व्यवस्था भी बन्द कर दी जाए तो आश्चर्य नहीं होगा।

९. स्पीड पोस्ट के चलन से रजिस्ट्री की उपेक्षा हुई है। स्पीड-पोस्ट का मूल्य रजिस्ट्री से अधिक रखा गया है।

१०. आजकल एम.ओ. फॉर्म भी उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं। पहले ऑर्डिनरी एम.ओ. की रसीद पाँच दिन बाद प्राप्त हो जाती थी, पर आज महीने में भी प्राप्ति-रसीद मिल जाए तो भाग्य समझिए।

११. पहले किसी प्रति की प्राप्ति की सूचना भी प्राप्त होती थी और तीन माह में निस्तारण भी, पर आज वर्षों तक उसे फाइल में दबाए रखा जाता है। हिन्दी में लिखा प्रार्थना-पत्र यदि अपंजीकृत हुआ तो उसे रद्दी की टोकरी में भी फेंका जा सकता है। हिन्दी के सन्दर्भ में उक्त विवरण देने का आशय यही है कि कम्प्यूटरीकरण से जिस तेज गति से काम करने का लक्ष्य रखा गया था, उसमें विलम्ब होता चला जा रहा है। पहले भी हम अंग्रेजों के गुलाम थे और आज भी हम अंग्रेजी के गुलाम हैं। पहले हम अंग्रेजी की गुलामी झेल रहे थे पर आज हम कम्प्यूटर के माध्यम से अमरीकी गुलामी स्वीकार करने के लिए बाध्य हो रहे हैं।

कोई भी प्रणाली ऑनलाइन हो या ऑफलाइन संपूर्ण और दोषरहित नहीं है, जब तक प्रणाली का निगरानी-सिस्टम चुस्त एवं दुरुस्त नहीं होता है, केवल कम्प्यूटर के डिब्बे रख देने से लाभ नहीं हो सकता है।

भारतीय संस्कृति का अपमान- प्रोफेसर चितले के अनुसार राष्ट्रभाषा में राष्ट्र विद्यमान होता है। जब राष्ट्रभाषा ही नहीं है तो राष्ट्र की संस्कृति भी नहीं होगी। हम बहुसंख्यक भारतीय समाज द्वारा अपनाई जाने वाली भाषा की उपेक्षा और अंग्रेजी का प्रतिष्ठापन कर भारतीय संस्कृति का तिरस्कार करने पर आमादा हैं। जो इस कम्प्यूटर जैसी

अनेकानेक मशीनों और इण्टरनेट की गुलाम होती जा रही है। मशीनीकरण भारतीय समाज को पंगु बनाता जा रहा है। इण्टरनेट और कम्प्यूटर से उत्पन्न दुष्प्रभावों का वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। क्योंकि समाचार-पत्र और टी.वी. चैनल इनसे उत्पन्न दुष्परिणामों के समाचार लगातार प्रकाशित करते रहते हैं। ताजा उदाहरण 'ब्लू व्हेलगेम' का है।

हिन्दी भाषा-प्रेमी साहित्यकारों की दयनीय स्थिति- एक साहित्यकार विचार-मंथन कर उपयुक्त उद्धरण संकलन कर, रात-दिन अध्ययन कर, विचारों को चुनकर, एक चार-पांच पृष्ठ का एक आलेख तैयार करता है। प्रकाशक, संपादक चाहता है कि आलेख कम्प्यूटर टाइप कर, ईमेल से भेजा जाए। साहित्यकार कम्प्यूटर नहीं रखता है, उसे पांच पृष्ठ कम्प्यूटर पर टाइप करवाने के लिये २० रु. प्रति पृष्ठ की दर से १०० रुपये व्यय करने होंगे और स्पीड पोस्ट से १ रु. के लिफाफे सहित ३२ रुपये स्पीडपोस्ट चार्ज देना होगा। इस प्रकार १४० रुपये के एवज में उसे एक समाचार-पत्र या एक पत्रिका प्राप्त होगी। श्रम का तो कोई मूल्य मिलेगा ही नहीं। इसके अलावा एक साहित्यकार और पत्रकार को सम्मानस्वरूप क्या मिलता है-एक प्रतीक चिह्न और कागजी कबूतर (प्रशंसा-पत्र) क्या इससे उसका परिश्रम फैल सकता है?

दूसरी ओर सिनेमा और टी.वी. की नायक नायिकाओं और बल्ला भांजने वाले खिलाड़ियों को विज्ञापनों में दो पंक्तियाँ बोलने के लिए करोड़ों रुपये का भुगतान किया जाता है। साहित्यकारों से अधिक तो नचैए-गवैए धनोपार्जन कर लेते हैं। इसी प्रकार आज की पीढ़ी टी.वी. पर नाच की प्रतिस्पर्द्धा में भाग लेने में संलग्न हो रही है।

बहुजन प्रयोगी भाषा को राष्ट्रभाषा न बनाए जाने से न केवल हिन्दी पतित हो रही है, बल्कि भारतीय संस्कृति मृतप्राय हो रही है। हिन्दी के नाम पर अंग्रेजी का वर्क लगाकर कम्प्यूटर प्रोसेस्ड डिब्बे से पैक कर इण्टरनेट से निर्यात किया जा रहा है। हिन्दी, डिग्रियों से नहीं मन से जुड़ाव और अध्ययन से आती है।

१६ से २८ फरवरी २०१८

संस्था-समाचार

जन्मदिवस एवं विवाह वर्षगाँठ- ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में २० फरवरी को श्री अंकुर भार्गव के जन्मदिन पर उनकी पत्नी श्रीमती सुवर्चा ने यज्ञ किया। २८ फरवरी को श्री वासुदेव जी आर्य ने अपनी मँझली पुत्री सुमन-अमित माहेश्वरी के विवाह वर्षगाँठ के अवसर पर यज्ञ किया। परोपकारिणी सभा की ओर से दोनों यजमानों को हार्दिक शुभकामनाएँ।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, ब्रह्चारी, आर्यवीर, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष और बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में उपलब्ध है। पिछले १५ दिनों में बैंगलोर, जोधपुर, फरीदाबाद, अहमदाबाद, नोएडा, कुचेरा, वीलू, बनासकांठा, अलवर, जालन्धर, जयपुर आदि स्थानों से २० अतिथि आये।

इसी क्रम में फ्लॉरिडा (अमेरिका) से १७ व्यक्तियों का दल महर्षि दयानन्द संग्रहालय देखने हेतु श्री अजय महता के निर्देशन में ऋषि उद्यान आया। यज्ञशाला में यज्ञ, दोपहर भोजन एवं विश्राम के पश्चात् पुष्कर प्रस्थान किया।

दैनिक प्रवचन-प्रात: कालीन सत्संग में प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु जी, सभा मंत्री श्री ओम्मुनि जी, आचार्य कर्मवीर जी के व्याख्यान हुए। सायंकालीन सत्संग में प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु जी, आचार्य सत्येन्द्र जी, आचार्य कर्मवीर जी के प्रवचन और ब्र. उत्तम जी के भजन हुए। शनिवार सायंकालीन प्रवचन में श्री सुरेन्द्र सिंह जी और श्री रमेश मुनि जी ने अपने विचार प्रस्तुत किये। रविवार सायंकालीन प्रवचन में श्री प्रभाकर आर्य ने व्याख्यान किया एवं ब्र. प्रदीप जी ने भजन सुनाया।

हम भी याद आयेंगे

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी

सोमेश 'पाठक'

यह ठीक है कि चमत्कार जैसे शब्द सैद्धान्तिक क्षेत्र में अपना कोई अर्थ अथवा अस्तित्व नहीं रखते। पर यह सम्भव है कि इस चित्र-विचित्र संसार की चित्र-विचित्र घटनायें सामान्य मस्तिष्क को ऐसे शब्दों की कल्पना करने पर मजबूर कर देती हों। शायद ऐसा ही है इसलिये पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का जीवन हमें किसी चमत्कार से कम नहीं लगता। किस मनुज का यह साहस है कि वह ऐसी कल्पना भी कर सके कि महज २६ वर्ष की आयु में पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जैसी प्रतिभा इतना कार्य करके अपनी अनन्त की यात्रा पर चली भी गयी थी। पर इतिहास बताता है कि ऐसा हुआ है और न सिर्फ इतिहास बल्कि पं. गुरुदत्त की लेखनी भी यही बात बोलती है। अरे! धन्य होंगे वो लोग जिन्होंने पं. गुरुदत्त के दर्शन किये होंगे। धन्य होगी वो धरा जहाँ कभी पं. गुरुदत्त ने अपने कदम रखे होंगे। धन्य-धन्य वो माता जिसकी कोख ने पं. गुरुदत्त को जन्म दिया। धन्य है यह भू-मण्डल जहाँ कभी पं. गुरुदत्त जैसी प्रतिभा अवतरित हुयी थी।

२६ अप्रैल सन् १८६४ ई. की बात है। पंजाब के मुल्तान (पाकिस्तान) में लाला रामकृष्ण और उनकी पत्नी को एक पुत्र की प्राप्ति हुई। कहते हैं कि लाला रामकृष्ण ने अपने इस पुत्र की प्राप्ति के लिये अपने कुलगुरु से प्रार्थना की थी तथा वे ऐसा मानते भी थे कि उनका पुत्र उनकी प्रार्थना का फल ही है। अस्तु।

पं. गुरुदत्त का प्रारम्भिक नाम वैरागी रखा गया तथा जन्म के अनुसार 'मूला' रखा गया जो कि कभी प्रयोग नहीं किया गया, क्योंकि हिन्दुओं में ऐसा रिवाज है। जब बालक वैरागी १२ वर्ष का हुआ तो गोस्वामी राधालाल ने उसे गुरुदत्त नाम दिया। जिसका अर्थ होता है 'गुरु का दिया हुआ'। कालान्तर में वे अपना नाम 'गुरुदत्त विद्यार्थी' लिखने लगे। पं. गुरुदत्त की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के माध्यम से ही हुई। पण्डित जी के पिता एक सुपठित और विद्वान् व्यक्ति थे। इस कारण गणित, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि की शिक्षा उन्हें अपने पिता से ही प्राप्त हुई। इसके बाद झंग (पाकिस्तान) के एक स्कूल में उनका दाखिला कराया गया। यहीं से उन्होंने ऐंग्लो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल परीक्षा पास की और फिर मुल्तान के हाई स्कूल में प्रवेश लिया। इस समय तक पण्डित गुरुदत्त की बौद्धिक शक्ति के चर्चे होने लगे थे। जनवरी १८८१ में गुरुदत्त ने गवर्नमेण्ट कॉलेज लाहौर में प्रवेश लिया। हांलाकि इस समय तक पं. गुरुदत्त पर आर्यसमाज का प्रभाव पड़ चुका था। पर ब्रैडला, जॉन स्टुअर्ट मिल, बेन तथा डार्विन जैसे दार्शनिकों का प्रभाव ज्यादा था। इसलिये कह सकते हैं कि तब तक गुरुदत्त नास्तिक थे। कॉलेज के द्वितीय वर्ष में ही पं. गुरुदत्त ने लगभग सभी योरोपीय दार्शनिकों को पढ़ डाला था। साथ ही उन्होंने उर्दू, फारसी के सभी उच्चस्तरीय दार्शनिक ग्रन्थों को भी पढ़ डाला था। विज्ञान और गणित उनके रुचिकर विषय थे। हर बड़े से बड़े वैज्ञानिक का पक्ष उन्हें मालूम था। इस बात से यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि १८ वर्ष का वह बालक किस प्रतिभा का अधिकारी होगा। प्रारम्भ में पं. गुरुदत्त जेरेमी बेन्थम के उपयोगितावाद के प्रबल समर्थक थे, उनका मानना था कि स्वामी दयानन्द भी इसी सिद्धान्त के व्याख्याता हैं तथा वेदों में भी इसी की चर्चा की गयी है, परन्तु जब उन्होंने आर्ष ग्रन्थों और आचार-शास्त्रों को पढ़ा तो बेन्थम का आकर्षण फीका पड़ गया। उस बात का उल्लेख भी कर ही दूँ जिसका प्राय: मञ्चों से उद्घोष किया जाता है, जिस घटना ने पण्डित जी के जीवन को पूर्णत: बदल कर रख दिया था, जिसने एक नास्तिक को सच्चा आस्तिक बना दिया था। अक्टूबर १८८३ में सारे देश में स्वामी दयानन्द की भयंकर रुग्णता का समाचार फैला हुआ था। उस समय लाहौर की कार्यकारिणी ने स्वामी जी की सेवा करने के लिये पं. गुरुदत्त और तत्कालीन उपप्रधान लाला जीवनदास को अजमेर भेजा। इस समय पण्डित गुरुदत्त की आयु मुश्किल से २० वर्ष होगी। वे कॉलेज के तृतीय

वर्ष में अध्ययन कर रहे थे। स्वामी जी की अन्तिम घड़ियों में पं. गुरुदत्त ने उनकी पुत्रवत् सेवा की, जिससे कि वे सभी की प्रशंसा व सम्मान के पात्र बन गये थे।

यहाँ हम लाला लाजपतराय के शब्दों का सहारा लेना चाहते हैं। लाला जी कहते हैं, ''हाँ, यह सत्य है कि स्वामी दयानन्द जैसे महान् पुरुष की मृत्यु के दृश्य ने पं. गुरुदत्त के हृदय को अन्तर्तम तक प्रभावित किया था। उसने देखा कि यह महापुरुष परमात्मा के प्रति अपनी दृढ़ आस्था प्रकट करता हुआ गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुये शरीर का त्याग कर रहा है। यहीं पर उसने भक्ति की महत्ता तथा गम्भीरता को अनुभव किया।'' इस दिन के बाद वो दिन कभी न आया जब पण्डित गुरुदत्त को ईश्वर की सत्ता पर सन्देह हुआ हो। इस घटना ने पण्डित जी के भावी लेखन, भाषण और कार्यों को प्रभावित किया। स्वामी दयानन्द की मृत्यु के बाद आर्यसमाज के उत्थान का दायित्व तत्कालीन आर्य नेताओं के कन्धों पर आ गया। जिनमें स्वामी श्रद्धानन्द, पण्डित लेखराम और पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी शीर्षस्थ पंक्ति में थे। स्वामी जी की मृत्यु के बाद डी.ए.वी. की स्थापना की गयी, जिसमें पं. गुरुदत्त का बहुत बड़ा योगदान था। पण्डित जी सर्वात्मना आर्यसमाज के प्रचार में प्रवृत्त हो गये। आर्यसमाज के कार्यक्रमों में जाना तथा लोगों को आर्यसमाज की विचारधारा समझाना उनके नित्य कर्त्तव्य हो गये। पेशावर, जालन्धर, अमृतसर आदि आर्यसमाजों में उनके व्याख्यान होते ही रहते थे, जो कि अत्यन्त गूढ़ व दार्शनिक होते थे। पण्डित जी ने अपने जीवन में आर्थिक संकट भी खूब झेले। इस बात का पता उनकी डायरी से चलता है। सर्वात्मना समर्पित पं. गुरुदत्त विद्यार्थी ने लेखन कार्य भी बड़े स्तर पर किया। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के लिये भी लिखा तथा पुस्तकें भी लिखीं, जो कि अधिकतर अंग्रेजी और उर्दू में थीं, जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है, जिससे कि पाठक पण्डित गुरुदत्त की प्रतिभा का कुछ अनुमान लगा सकेंगे। यथा- The Terminology of the Vedas and European Scholars, Evidences of the Human Spirit (I, II), Pecuniomania, The Realities of Inner life, Wisdom of the Rishis, Ishopanishad with Sanskrit Text and English Translation, Mundakopanishad, रुहानी जिन्दगी की हकीकतें, धन का डाह आदि अनेक ट्रैक्ट और किताबें लिखीं। इनमें से बहुतों का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है।

प्रकृति ने पं. गुरुदत्त को दुनिया में ठहरने का अधिक अवसर न दिया नहीं तो इतिहासकारों की उँगलियाँ थक जातीं उनके कार्यों का बखान करते-करते। पं. गुरुदत्त दिन और रात कार्य किया करते थे। अपने विश्राम के लिये भी वे समय न निकाल पाते थे। इस कारण वे अक्सर रुग्ण रहा करते थे। मल में खून आने की चर्चा उन्होंने अपनी दैनन्दिनी में कई बार की है, फिर उनको क्षयरोग हो गया था, जो कि उनकी जान लेकर ही ठीक हुआ। उनका शरीर सूख कर काँटा हो गया था लेकिन उस हालत में भी प्रचार-प्रसार व सभाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते थे। जब अधिक रुग्ण हुये तब कई जगहों पर उनका इलाज कराया गया। अन्त में उन्हें लाहौर लाया गया जहाँ उनके परिवार के सदस्य भी आ गये थे। मृत्यु की रात उनके प्रिय मित्र रैमलदास ने उन्हें ईशोपनिषद् पढ़कर सुनाया। वे स्वयं भी वेद मन्त्रों का उच्चारण करते रहे। इस प्रकार लम्बे काल तक पीड़ा सहनकर १९ मार्च १८९० को प्रात: ७ बजे पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी तन का पिंजरा खाली कर गये।

और सिखा गये दुनिया को कि -

''**कुछ कर दिखाने वाले उम्र के मोहताज नहीं होते।**''

मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें। **-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.१४**

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

आर्यसमाज! जन्म और जीवन-यात्रा

रामनिवास 'गुणग्राहक'

किसी व्यक्ति, वस्तु व संस्था आदि का नामकरण करते समय कई महत्त्वपूर्ण चीजों पर विचार किया जाता है, जैसे नाम सरल हो, सुवाच्य हो, सुबोध हो, सारगर्भित हो तथा सार्थक हो। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इन सब बातों का ध्यान तो रखा ही साथ ही इन सबसे बढ़कर उन्होंने अपनी संस्था का नाम आर्यसमाज एक बहुत महान् लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही रखा। ऋषि दयानन्द के मन-मस्तिष्क में आर्यावर्त का प्राचीन गौरव रचा-बसा था। वेद-विद्या के प्रचार-प्रसार और व्यवहार के द्वारा वे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसे पराक्रमी पुरुष और गौतम, कपिल, कणाद जैसे तत्त्ववेत्ता ऋषि यहाँ उत्पन्न करना चाहते थे। आर्यसमाज उनके स्वप्न में समाहित आर्यावर्त्त का बीजारोपण था। भारतीय संस्कृति को वैदिक संस्कृति कह लें या आर्य संस्कृति, उसमें सिद्धान्त और व्यवहार का ही अन्तर है। वैदिक आदर्शों के अनुसार जीवन जीने वाले आर्य कहाते हैं, इस प्रकार वेद से ज्ञान मिलने के कारण वैदिक और उसे व्यवहार में जीवन्त करने वाले आर्यों के कारण इसे आर्य संस्कृति कहा जाता है। वेद इसे विश्ववारा अर्थात् मानव मात्र के द्वारा वरण-स्वीकार करने योग्य घोषित करते हैं। ऋषिवर ने इस विश्ववारा संस्कृति को विश्वभर में प्रवृत्त होने का लक्ष्य हृदय में धर, उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपने सब वेदोक्त मन्तव्य प्रकाशित करते हुए आर्यसमाज की स्थापना की। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के शब्द देखिये-"जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है।" आर्यसमाज के छठे नियम में ऋषि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य घोषित करते ही हैं। इसी सन्दर्भ में सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम वाक्य पठनीय, मननीय हैं। ऋषि लिखते हैं- "सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूलोक में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिससे सब लोग सहज से धर्म्मार्थकाम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें।" यही भावना भूमिका के अन्तिम वाक्यों में भी व्यक्त की है।

धरती तल के मानव मात्र से लेकर प्राणी मात्र तक का सुख और कल्याण ऋषि दयानन्द की कार्य-योजना में था। हम एक बात कभी न भूलें कि चाहे हमने घर-परिवार, जाति-समाज, सम्प्रदाय व राष्ट्र आदि की संकीर्ण सीमाओं में बाँटकर अपने हृदय को छोटा कर लिया हो, लेकिन थोड़ी सी उदारता को हृदय में उभारकर देखिये तो पता चलेगा कि मानव की स्वाभाविक संवेदनाएँ ऐसी कोई भी संकीर्ण सीमा स्वीकार नहीं करतीं। **महर्षि दयानन्द जैसा महामानव जब एक ईश्वरीय आदेश के पालन में प्रवृत्त होकर कार्य करे और उस कार्य को युगजीवी बनाने के लिए संस्था का निर्माण करे तो भला उसका उद्देश्य विश्व-कल्याण से किञ्चित भी छोटा क्यों हो?** आर्यसमाज के जन्म का महान् उद्देश्य जान-समझ लेने के बाद जीवन-यात्रा की चर्चा करें तो हमारा कर्त्तव्य-बोध पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है। हम आर्यसमाज के प्रारम्भिक जीवन की बात करें तो लगता है ऋषि दयानन्द के साक्षात् दर्शन करने वाले या उनके बलिदान की ताजा-जीवन्त भावनाओं से अभिभूत आर्यसमाज की पहली-दूसरी पीढ़ी के आर्यों का जीवन व उनके कार्य बता रहे हैं कि उनके सामने लक्ष्य पूर्ण स्पष्ट था और उसके लिये उनका श्रम व समर्पण भी प्रशंसनीय था, असन्दिग्ध था।

हमारी पहली-दूसरी पीढ़ी के आर्यों के पराक्रमपूर्ण पुरुषार्थ की एक झलक तत्कालीन साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों के शब्दों में देखें और कुछ प्रेरणा लें। मुंशी प्रेमचन्द के शब्दों में- "आर्यसमाज ने सिद्ध कर दिया है कि समाज की सेवा ही किसी धर्म के सजीव होने का लक्षण है। सेवा का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है, जिसमें इसकी कीर्ति-ध्वजा न उड़ रही हो। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्यसमाज ने कदम उठाया। लड़कियों की शिक्षा की जरूरत सबसे पहले इसने समझी। वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत करने का सेहरा इसके सिर है। अन्धविश्वास और धर्म के नाम पर किये जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र इसने खोदी। सामाजिक और बौद्धिक धरातल को आर्यसमाज ने जितना ऊँचा उठाया है, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो।" साहित्य-प्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखते हैं- "आर्यसमाज की प्रतिष्ठा भारतीयों में नवजीवन की प्रतिष्ठा है। इसकी प्रगति

एक दिव्य शक्ति की स्फूर्ति है। देश में महिलाओं, पतितों तथा जाति-पाँति के भेदभाव को मिटाने के लिए महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज से बढ़कर इन नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया। आज जो जागरण भारत में दिख रहा है उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्यसमाज को है।'' श्री जयशंकर प्रसाद का मानना है-''सामाजिक जीवन को उत्प्रेरित करने और अतीत (प्राचीन) संस्कृति के पुनरुद्धार के लिये आर्यसमाज का कार्य प्रशंसनीय रहा है।'' एक अमेरिकी विद्वान् चार्ल्स एच. हेमसेथ ने लिखा है-''उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ईसाइयों को छोड़कर आर्यसमाज ने भारत की सभी धार्मिक संस्थाओं के सार्वजनिक कार्यक्रमों को पूरा करने में उनका नेतृत्व किया है।''

इन गौरवपूर्ण उद्धरणों के आलोक में आर्यसमाज के गुण व गरिमा का अधिक गान करने की आवश्यकता नहीं। आज हम सबके लिए सबसे बड़ा चिन्तनीय व चुनौतीपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या हम अपने पूर्वजों की उज्ज्वल परम्परा को जीवित रख सके? गत ५० वर्षों के अपने इतिहास की बात करें तो क्या उसके लिए कोई निष्पक्ष लेखक ऐसे ही गौरवपूर्ण शब्दों का प्रयोग करेगा? बात चाहे धार्मिक पाखण्ड व अन्धविश्वासों की हो या जातिवादजन्य छुआछूत-भेदभाव की। सामाजिक समरसता का प्रश्न हो या राष्ट्र की एकता-अखण्डता का। नई पीढ़ी के फैशन-फूहड़ता में बहकर संस्कारशून्य होने की बात हो या देश में बढ़ते हुए कत्लखाने या वृद्धाश्रमों की-इन सबके लिए हमने अर्थात् आर्यसमाज ने क्या किया? हाँ-हाँ हमारे नेता कहे जानेवालों के पास अपनी उपलब्धियों की सूचियाँ हैं। परिवार, समाज व राष्ट्र की प्रतिपल बिगड़ती परिस्थितियों के बीच हम अपनी उपलब्धियों के झण्डे गाढ़ें तो नितान्त अशोभनीय है, अमानवीय है। हमें मानना ही पड़ेगा कि हम जितना कुछ कर रहे हैं, उससे अधिक करने की आवश्यकता है। बुरा न लगे तो सच यह है कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह काम कम दिखावा अधिक है। ध्यान रहे प्रदर्शन की वस्तुएँ चमकदार तो होती हैं, लेकिन वे टिकाऊ व मूल्यवान् नहीं होतीं। क्षमा करें, हम पथ से पूरी तरह भटक चुके हैं। पद, प्रतिष्ठा और संकीर्ण स्वार्थ से परोपकार को बड़ा मानकर काम किये बिना हम न आर्य बन सकते हैं और न आर्यसमाजी कहला सकते हैं। सुविधाभोगियों व मञ्च पर माला पहनने वालों से महर्षि दयानन्द का काम नहीं होना। जब तक त्यागी, तपस्वी, स्वाध्यायशील, साधनाशील और वैदिक सिद्धान्तों के लिए जीने-मरने की भावना वाले आर्यजन आर्य संस्थाओं के शीर्ष पदों पर सुशोभित न होंगे तब तक वैदिक धर्म लुप्त होता रहेगा और हमारी उपलब्धियों की सूचियाँ भी लम्बी होती रहेंगी।

किसी के घाव कुरेदने से कहीं अधिक पीड़ादायक और आक्रोशित करने वाला काम है किसी के आन्तरिक दोषों, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों पर खुली चर्चा करना । आज का मानव अच्छा दिखने के लिए जितने प्रयास करता है, उतने प्रयास अच्छा बनने के लिए करे तो संसार की सब समस्याएँ दूर हो जाएँ। हम आर्य कहलाने वालों को अच्छा बनने के लिए सच्चे मन से प्रयास करने होंगे। सर्वप्रथम हमें महर्षि के महान् उद्देश्य के साथ अपने कर्त्तव्य-बोध को जोड़ना पड़ेगा। हमें सदैव ध्यान रखना होगा कि हम विश्व कल्याण-अभियान के अंग हैं। आर्यसमाज से जुड़कर किसी भी प्रकार की स्वार्थजन्य संकीर्ण भावना से प्रेरित-प्रभावित होकर कुछ भी करना वा सोचना तक भी मेरे विचार से स्वयं के लिए आत्मघाती तथा सामाजिक दृष्टि से मानवता के प्रति सबसे बड़ा अपराध है। विदित हो कि मनु आदि सब ऋषि व शास्त्रकार दण्ड-व्यवस्था के समय अधिक सामर्थ्यवान् व बड़े पद वाले को सामान्यजन से अधिक दण्डनीय मानते हैं। एक आर्य चाहे राजनैतिक व अर्थ-बल आदि की दृष्टि से बड़ा व सामर्थ्यवान न भी हो, लेकिन संसार के सर्वोपरि विद्याबल, आचार-बल की दृष्टि से वह विश्व के शिरोमणि सज्जनों में गिना जाएगा। एक सच्चा-सिद्धान्तजीवी आर्य जहाँ कहीं जाएगा, वह अपने विद्याबल और चरित्र-बल के कारण सबसे न्यारा और सबका प्यारा बन जाएगा। व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास के साथ जीवन के हर क्षेत्र में सफलता और उन्नति के द्वार खोलने वाला आर्यसमाज, व्यक्ति से लेकर विश्व मानव के कल्याण को समर्पित आर्यसमाज से जुड़कर भी हम संकीर्ण स्वार्थों में ही जकड़े रहे, हृदय को उदार और महान् न बना सके तो हम से अधिक हत्भाग्य कौन होगा? विश्व-कल्याण से बड़ा कोई लक्ष्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह आत्म-कल्याण के द्वार खोलता है। संसार के सर्वोपरि उद्देश्य को समर्पित ऋषि-संस्था आर्यसमाज का सक्रिय कार्यकर्त्ता होना और उससे भी अधिक पदाधिकारी होना निश्चित रूप से अन्य सब पदों से बड़ा पद है तथा सब बड़प्पनों से बड़ा बड़प्पन है। आर्यसमाज

किसी सामाजिक व्यवस्था वा राजनियमों से नहीं चलता, यह ईश्वरीय नियमों-आदेशों के अनुसार चलता है। इसके कार्यकर्त्ता व कर्णधार उन्हीं ईश्वरीय नियमों पर चलकर परमात्मा के वेदप्रदत्त आदेशों का पालन करते हुए उस ईश्वर के लोक प्रतिनिधि बनकर बड़ी से बड़ी सामाजिक व राजसत्ता से टकरा जाते हैं। ऐसी महान् संस्था से जुड़कर भी इतने महान् गुण-गौरव से वञ्चित रह जाना, विश्व-कल्याण के पुण्य पीयूष का पान न करके संकीर्ण स्वार्थ साधनेरूप गर्हित गरल गटकते रहना महादुर्भाग्य नहीं तो क्या है? ऐसे ही विचार करने पर यह मानवता के प्रति सबसे बड़ा पाप और अपराध भी सिद्ध हो जाता है, अत: आर्यजन स्वार्थ से बचें।

आर्यसमाज के भविष्य की बात करें तो वर्तमान पीढ़ी के सब दोषों-दुर्गुणों एवं तज्जन्य दुरवस्था को नि:संकोच स्वीकारने के बाद भी मैं भविष्य के प्रति निराश नहीं हूँ। मेरे जैसे सब सत्यनिष्ठ आर्यों का हृदय इसकी साक्षी देगा कि सत्य के लिए किया गया संघर्ष अर्थात् ऋषि का तप, त्याग और बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाएगा। सत्य की शक्ति को न समझ पाने वाली ये अभागी पीढ़ी आज न सही, लेकिन एक छोटी-मोटी उथल-पुथल के बाद, भोगवादी अन्धी दौड़ के दुष्परिणाम सामने आने के बाद सच्चे सुख के लिए छटपटाती कोई भावी पीढ़ी भोग-वितृष्णा से भरा हृदय लेकर जब हाथ-पाँव मारेगी तो महर्षि देव दयानन्द के जीवन-आदर्श और वेद की कल्याणी वाणी ही उसका आश्रय होगी। जब तक मनुष्य के हृदय में अपने बल-पराक्रम या बुद्धि-कौशल से सुख पा लेने की प्रवृत्ति बनी रहती है तब तक वह सच्चे हृदय से प्रभु के प्रति समर्पित नहीं हो सकता। उसका यह अहंकार टूटना चाहिए, ये अहंकार या तो विद्या की विनम्रता से धीरे-धीरे क्षीण होता है या किसी हृदय विदारक आघात से। आज का उद्दण्ड मानव सत्य-विद्या के प्रति आकर्षित तो दिखता है, लेकिन उससे प्रेरित होकर सत्य को जीवन का अंग बनाने, विद्या को व्यवहार में लाने के प्रति उसमें प्रभावी इच्छा-शक्ति नहीं दिखती। लगता है वह किसी बड़े आघात की प्रतीक्षा में है। अस्तु!!

मनुष्य की प्रवृत्ति-परिवर्तन के दो ही कारण बनते हैं- चेतना या वेदना। चेतना बौद्धिक जड़ता को समाप्त करती है तो वेदना हृदय की निष्ठुरता को । हम इनकी गहराई में जाकर निष्कर्ष निकालने की अपेक्षा इतना ही संकेत देकर आगे बढ़ेंगे कि शिक्षा, उपदेश वा व्यवस्था के रूप में दी गई चेतना की अवहेलना का सांकेतिक परिणाम दिखाया जाता है। आर्यो! वेदना से बचना है तो चेतना की चुनौती को स्वीकार करना सीख लो। मनुष्य के पास सत्य का स्वरूप और उसकी शक्ति के साक्षात् दर्शन कराने के लिए वेद विद्या से बढ़कर कुछ नहीं हो सकता। उस परम पावन वेद-विद्या को पाकर भी हम सत्य से मुँह चुराते रहें तो-'**अवश्यमेव हि भोक्तव्यं...**' से मुँह चुराना कभी किसी के लिए सम्भव नहीं।

बीते कल की उज्ज्वलता आर्यसमाज के इतिहास में अंकित है, आने वाला कल वैदिक जीवन मूल्यों के लिए नि:सन्देह उज्ज्वलता लेकर आयेगा, क्योंकि ज्ञान का सूर्य अज्ञान-रूपी बादलों में छिप तो सकता है, अस्त नहीं हो सकता। प्रश्न वर्तमान का है, हम सब सत्यनिष्ठ, सिद्धान्तजीवी आर्यजन एकजुट होकर थोड़े-से प्रयास करें तो अल्पकाल में आर्यसमाज का कायाकल्प हो जायगा। लेख में कड़वी सच्चाई लिखना तो अप्रियकर होगा, लेकिन करणीय कार्यों पर प्रकाश डालना सर्वथा उचित है। जो आर्यजन ऋषि के तप, त्याग और अमर बलिदान को सफल और सार्थक करने के लिए सच्चे अर्थों में कुछ करना चाहते हैं, वे संध्या और ऋषि ग्रन्थों, वेदों के स्वाध्याय को जीवन का अंग बना लें। यज्ञ नित्य करें तथा सिद्धान्तजीवी, सच्चे आर्यों को संगठित करने का संकल्प लेकर सिद्धान्त-विरुद्ध व्यवहार करनेवालों को भी संध्या-स्वाध्याय व यज्ञ के लिए प्रेरित करें। सबको आर्य होने के गौरव की अनुभूति करायें। जो ऐसा करने को तैयार ही न हों, कुटिलता न छोड़ें, उनकी उपेक्षा करें, सच्चे आर्यों का संगठन-बल बढ़ायें, उन्हें सम्मान दें। ध्यान रखें कि संध्या-स्वाध्याय व यज्ञ न करने वाले, दोहरा जीवन जीने वाले लोगों से किसी का कुछ भी भला नहीं होना। सन् २०२५ हमारे लिए दो ऐतिहासिक अवसर लेकर आ रहा है, महर्षि की दो सौवीं जन्मतिथि (दूसरी जन्म-शताब्दी) तथा आर्यसमाज का १५० वाँ स्थापना दिवस। किसी को लगे कि अभी बहुत दिन हैं तो ध्यान रखें कि हमारे सामने करने योग्य कार्य व समस्याएँ भी इतनी हैं कि कर्मक्षेत्र में कूदेंगे तो समय कम प्रतीत होगा। सिद्धान्तहीन लोगों के सामने सिद्धान्तजीवी आर्यों को खड़ा करना, मुख्यधारा में लाना छोटा काम नहीं है। वर्तमान को सुधारने का कोई दूसरा रास्ता भी नहीं है, प्रभु से प्रार्थना-

''**धियो यो न: प्रचोदयात्।**''

आर्यजगत् के समाचार

१. चतुर्वेद पारायण यज्ञ- ११ मार्च से १२ अप्रैल २०१८ तक पातञ्जल योगधाम आर्यनगर, ज्वालापुर, हरिद्वार, उत्तराखण्ड में स्वामी दिव्यानन्द की अध्यक्षता में चतुर्वेद पारायण यज्ञ धूमधाम से मनाया जा रहा है, जिसमें सभी आर्यजन सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

२. वार्षिकोत्सव का आयोजन- आर्ष कन्या गुरुकुल भुसावर, जि. भरतपुर, राज. का वार्षिकोत्सव ७, ८ अप्रैल २०१८ को आयोजित किया गया है। उत्सव में प्रख्यात संन्यासी, विद्वान्, भजनोपदेशक एवं आर्य नेता पधार रहे हैं। कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियाँ संगीत एवं व्यायाम का प्रदर्शन करेंगी। इस अवसर पर सभी आर्यजन आमन्त्रित हैं। सम्पर्क- ९६९४८९२७३५, ८४४१०८७४०८

३. आर्यसमाज की स्थापना- आर्यसमाज सैक्टर-१६, करनाल, हरि. में दि. ४ मार्च २०१८ को नये आर्यसमाज की स्थापना की गई। एक विशाल समारोह में नगर की विभिन्न आर्यसमाजों के अधिकारी, सदस्यों एवं सैक्टर-१६ के निवासियों ने बड़े उत्साह से कार्यक्रम में भाग लिया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री हरीश रंगा-आई.जी. पुलिस थे। मुख्य वक्ता स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के सान्निध्य में नये आर्यसमाज की स्थापना की गई।

४. यज्ञ सम्पन्न- स्त्री आर्यसमाज मॉडल टाउन जालन्धर में माघ महीने में चलने वाला यज्ञ दि. १३ फरवरी २०१८ को पूर्णाहुति के साथ सम्पन्न हुआ। जनवरी मकर संक्रान्ति से प्रारम्भ होकर यह यज्ञ बड़े उत्साह और हर्षोल्लास के साथ एक महीने चला। इस अवसर पर मुख्य अतिथि स्व. श्रीमती कमलकान्ता आनन्द के पुत्र श्री प्रदीप आनन्द को स्त्री आर्यसमाज की तरफ से सम्मानित किया गया। श्रीमती ज्योति शर्मा तथा श्रीमती नीरू कपूर ने मंच का संचालन किया। स्त्री समाज की प्रधाना श्रीमती सुशीला भगत ने अपने सम्बोधन में कहा कि स्त्री आर्यसमाज मॉडल टाउन द्वारा समय-समय पर समाजसेवी संस्थाओं, गुरुकुलों तथा गरीब कन्याओं की शादी के लिए सहायता प्रदान की जाती है। इस अवसर पर आर्यसमाज के प्रधान श्री अरविन्द घई, मन्त्री श्री अजय महाजन, श्रीमती राजमोहिनी सोंधी, डॉ. सुषमा चोपड़ा तथा बहुत से गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे।

५. प्रतियोगिता सम्पन्न- महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा द्वारा आयोजित स्वामी विरजानन्द पुरस्कार (योगदर्शन एवं वेदभाष्य प्रतियोगिता) में प्रभात आश्रम के विद्यार्थी तरुण कृष्ण ने प्रथम स्थान प्राप्त कर पाँच सहस्र रुपयों की प्रतियोगिता जीती। इस अवसर पर प्रभात आश्रम में हर्षोल्लासपूर्वक सम्मान-सभा का आयोजन किया गया और तरुण कृष्ण को सम्मानित किया गया।

चुनाव समाचार

६. आर्यसमाज सैक्टर-१६, करनाल, हरि. के चुनाव में **संरक्षक**- श्री सतेन्द्र मोहन आर्य व माता ओमवती आर्या, **प्रधान**- श्री ओमपाल सिंह आर्य, **मन्त्री**- श्री बलवीर आर्य को चुना गया।

७. आर्य लेखक परिषद, दिल्ली के चुनाव में **संरक्षक**- डॉ. श्यामसिंह शशि, डॉ. भवानीलाल भारतीय, **अध्यक्ष**- आचार्य वेदप्रिय शास्त्री, **मन्त्री**- श्री अखिलेश आर्येन्दु, **कोषाध्यक्ष**- श्री हनुमान प्रसाद को चुना गया।

वैवाहिक

८. वर चाहिये- आर्य परिवार, संस्कारित, आयु ३० वर्ष, कद- ५ फुट ३ इंच., शिक्षा- एम.टैक (कम्प्यूटर साइंस), व्याख्याता, गौर वर्ण युवती हेतु आर्यसमाजी परिवार का समकक्ष संस्कारित युवक चाहिए। **सम्पर्क- ०९६३९०४२४६९, ०९२३५८५५९२५**

शोक समाचार

९. महर्षि दयानन्द वैदिक साधु आश्रम, हिण्डौन, करौली, राज. के **स्वामी शिवानन्द सरस्वती** का १०९ वर्ष की आयु में दि. ७ मार्च २०१८ को निधन हो गया, जिनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। परोपकारिणी सभा द्वारा स्वामी शिवानन्द सरस्वती को प्रतिमाह पेंशन प्रदान की जाती थी। परोपकारिणी सभा दिवंगत आत्मा को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि देते हुए उनकी आत्मा की शान्ति हेतु प्रभु से प्रार्थना करती है।

१०. परोपकारिणी सभा के सदस्य श्री विरजानन्द 'दैवकरणि' के ज्येष्ठ भ्राता मेजर रतनसिंह यादव के ज्येष्ठ पुत्र **डॉ. अरुण यादव** (रेवाड़ी जिले के भाजपा प्रभारी) का १४ फरवरी २०१८ को हृदयगति रुकने से देहान्त हो गया, जिनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न किया गया। २२ फरवरी को गुरुकुल गौतम नगर, नई दिल्ली के संचालक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती ने शान्ति यज्ञ सम्पन्न करवाया। परोपकारिणी सभा दिवंगत आत्मा को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि देते हुए उनकी आत्मा की शान्ति हेतु प्रभु से प्रार्थना करती है।

११. रावत मिष्टान्न भण्डार एवं रावत होटल के मालिक **श्री चन्द्रप्रकाश देवड़ा** का ३ मार्च २०१८ को जयपुर में निधन हो गया, जिनका अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से ४ मार्च को आर्यसमाज के विद्वान् पं. सत्यानन्द जी वेदवागीश द्वारा करवाया गया। परोपकारिणी सभा दिवंगत आत्मा को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि देते हुए उनकी आत्मा की शान्ति हेतु प्रभु से प्रार्थना करती है।

इन्दौर के प्रतिष्ठित उद्यमी एवं परोपकारिणी सभा के अनन्य सहयोगी

श्री शिवकुमार चौधरी

जिनके सौजन्य से प्रतिवर्ष विश्व पुस्तक मेले में सत्यार्थप्रकाश, ऋषि जीवन चरित्र एवं आर्याभिविनय का निःशुल्क वितरण किया जाता है। साथ ही परोपकारिणी सभा के सभी कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा का सम्पूर्ण व्यय भी आपके द्वारा ही किया जाता है।

आर जे/ए जे/80/2018-2020 तक प्रेषण : १५ मार्च , २०१८ आर.एन.आई. ३९५९/५९

जन्म
२६ अप्रैल १८६४

वेद मनीषी

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी

मृत्यु
१९ मार्च १८९०

सम्बन्धित लेख पृष्ठ सं. ३७ पर

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१